

परोपकारायसता विज्ञृतयः

श्री जैन हितोपदेश

भाग १ भा.

श्री हरतरंगच्योपज्ञान नन्दि, कव्यपुर
शात मूर्ति मुनिराज श्री वृद्धिचन्द्रजीके निष्पाण
मुनि कर्पूरविजयजीके विरचित.

बाल जीवोंके उपकारार्थे जूवे लुकेसकमृहस्यैकी
उदार सहभयतासि

हिदि गिरामें भापातर कराके छपाके भक्तिद कर्ता,

श्री जैन श्रेयस्कर मंरुळ-मेसाणा

अमदावाद

धी निर्मल प्रिटीग प्रेममें ललुभाइ ईश्वरदास त्रीवेदीने छपा

धीर सवत्

२५३३

सने

१९०७

विक्रम सवत्

१९६३

अनुक्रमणिका.

प्रकरण.	विषय.	पृष्ठ
१	श्री जैन बाह्यहितवाचक-प्रश्नोत्तर	१—३६
२	उपदेशसार	३७—६४
३	सद्गुरुसे सुविनित शिष्यके प्रश्न और तिसका अत्यंत संक्षेप साररूप समाधान.	६४—८०
४	सर्वज्ञ कथिततत्त्व रहस्य	८१—१४२
५	सामायकादि षड् आवश्यक तिनके पवित्र हेतुयुक्त	१४२—१४६
६	श्री जैन पर्व तिथियें	१४६—१५०
७	रात्रिज्ञोजन त्याग	१५१—१५२
८	पढातो सही मगर विचारशुन्य रहा	१५३—१५४
९	नवकार महामंत्र	१५५—१५६
१०	उत्तम गुणग्रहणता	१५७—१६१
११	विविध विषय संग्रह	१६२—१८३
१२	मार्गानुसारीके पैंतीस गुण	१८४ ~

प्रस्तावना.

सर्वोत्तम सर्वज्ञ प्रणीत सिद्धांतका सार यह है कि, मोक्षार्थी ज्ञव्य जीवोंने सम्यग् ज्ञानदर्शन और चारित्रकों सम्यग् रीत्यासेवन करना. सम्यग् ज्ञान विना सम्यग्दर्शन (समकृत) की प्राप्ती नहि हो सकती है, सर्वज्ञ वीतराग प्रज्जुने प्रदर्शित कीयाहुवा सर्व जीवाजीवादि नैव तत्वोंका, धर्माधर्मादि षट् इव्योका, और शुद्ध देवगुरु व धर्मका, यथार्थ स्वरूप समजनेसे सम्यग् ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है. समकृत एक अपुर्व चिंतामणी सदृश है और नुन्की प्राप्तिकेलीये प्रबल पुरुषार्थकी पुरी जरुरत है प्राप्त कीयाहुवा सम्यग्गर्तनकों समालके रखनेके वास्ते नुन्सेज्जी अधिक पुरुषार्थकी जरुरत है सदृज्जाग्य योगे प्राप्त कीयाहुवा सम्यग् ज्ञानदर्शनको सार्थक करनेके वास्ते सत्चारित्रकी खास आवश्यकता है सम्यग् ज्ञानदर्शन और चारित्रकी समकालीन सहायतासे सर्वोत्तम मोक्षसुख स्वाधीन होसकता है जन्म जरा और मृत्युका सर्वथा ह्य होना अ-

श्रांत तत् संबंधी अनंत दुःखका सर्वथा नाश होना
 वोही वास्तविक मोक्ष है ऐसा सहज एकांत अक्षय
 अनंत सुख प्राप्त करनेके लिये सर्वथा उद्यम करना
 एहीज अमूल्य मनुष्यदेहका सार्थक है उता प्रमाद
 वशात् जीवो स्वस्वार्थ साधनेमें उपेक्षा करते हैं ऐसा
 प्रमादवाले मनुष्योंको किंचित् जागृत करनेके वास्ते
 यातो सक्षेप रुचि बालजीवोकी जीज्ञासा बढानेका
 पवित्र उद्देशसें विविध विषय गर्जित इस ग्रथकी
 योजना करनी उचित लगनेसें प्रस्तुत प्रयास कीया
 गया है वह सार्थक हो। और उस द्वारा पवित्र शास-
 नकी तात्विक उन्नति होने पावे ऐसा सदाशय रखके
 इस प्रस्तावना पूर्ण करताहुं

सन्मित्र कर्पूरविजयः

जूमिका.

महाशय सुझ बंधुओ !

सर्वज्ञज्ञापित धर्म सबसैं श्रेष्ठ है, अनादि है, उन्का रहस्य अति गुठ और रसिक है, रचना न्याय पुरः सर है, उन्सैं सर्व प्रकारका फायदा, सर्वसिद्धि और मोक्षज्ञी प्राप्त होता है इत्यादि धर्मका महात्म्य अपन सब धर्मानुयायी बंधुओसैं सुनते है. लेकीन अन्य जनोंके पास यथार्थ विवेचन करके इन्कों हस्तामलकवत् करनेको, मात्र बहोत श्रोमे बंधुओ शक्तिमान होगा क्योंकि इस प्रकारका उच्च धार्मिक ज्ञान प्राप्त करनेकों कोइ ज्ञाग्येज प्रयास करते है. लेकीन परोपकारके वास्ते आत्म समर्पण करनेवाले मुनिमहाराजाओका वचनामृतका सिंचनसैं और परंपरासैं चलाआवता कुष्ठ अंध श्रद्धानसैं अपना कोमल हृदयमें धर्म अंकुर यद्यपी जागृत तो है लेकीन मोक्ष फळ प्राप्त करनेके वास्ते इस अंकुरेकों ज्ञान जलसैं बढाकर समकितरूप मूलीको द्रढ व्रत तपस्यादि शाखा प्रशाखा और देवेंद्र नरेंद्रादि पुष्प पत्र

वाले वृक्षरूप बनानेके वास्ते यार्मिक केळवणीही प्र-
 बल साधन है प्राचीनकालमे सुश्रावकों राज्यतत्र
 जेसा महान् कार्य चलानेके साथ उच्च धर्मज्ञान प्राप्त
 कर, अन्य जीवोंकी प्रतिबोध करतेथे लेकिन
 आज कल अपन प्रायः गृह सत्कार चलानेके वास्ते
 ज़ी निष्फळ या अल्प फळदायी अन्याययुक्त व्या-
 पारादि कृत्यो करते है और केवल अध श्रदानसेही
 वीरपुत्रो कहलाते है वो अपनको लजास्पद नहि है
 क्या ? इतनातो कबुल करना परेगा की पूर्व समया-
 पेक्षया वर्तमान समयमे अल्पायुष्य और मद बुद्धि-
 वाली प्रजा होनेसे ऐसा बहोत विस्तारवाले धर्म र-
 हस्यका पूर्ण रसज्ञ नहि होसकते है लेकिन परम
 कृपालु मुनिमहाराजा अपनको वारवार स्मरण क-
 राते है की “ यथामति शुजेयतनीयम् ” सो आयु-
 ष्य और बुद्धिके अनुसार अपने यत्न करना चाहीये
 पूर्व कालापेक्षया हालमें उपदेशक मुनिमहाराजकी
 जोगवाइ कम होनेसे उनका वचनामृतको पान क-
 रनेकेलीये सर्व बधुओ जाग्यशाली बनते नहि है सो

ऐसा ज्ञव्य प्राणीयोंका अनुग्रहकेलीये आपका समग्र ज्ञानका चितार लेख रूपकमें बहारपानकर अपनकों आज़ारी बनानेकों वो चुकते नहि है, और ऐसा प्रयास करनेकी वर्तमान समयमें अति आवश्यकता है क्योंकि उत्तरोत्तर आयुष्य बुद्धि और धारणा शक्तिका ह्रास होता है. सो अल्प समयमें सरलतासें ज्यादा बोध होने पावे ऐसा मातृजाषाके लेखोसें बहोत अंशे ज्ञव्य जीवांकों अज्ञा लाज होसकता है. इस हेतुसें हमने मुनिमहाराज श्री कर्पूरविजयजीने तत् संबंधी विनती करनेसें इनोंने केवल परमार्थ बुद्धिसें परिश्रम लेकर इस लघु, सरल, बोधदायी पुस्तक रचकर समस्त संघको आज़ारी कीया है.

श्री जैनहितोपदेश नामक इस ग्रंथ स्व नाम-सेंही स्व गांजीर्य महत्ता और बोधकत्व जनावता है उंची हदतक नहि पहुचाहुवा सुझ गुणग्राही निष्पक्षपाती पुरुषोंको हीत बोध करनेकी शक्ति इस ग्रंथ सरलता और रसिकतासें धरावते है वो निर्विवाद है.

इस लघु ग्रंथका क्रम ऐसी सरलतासे किया-
हुवा है की प्रायः सर्व वाचक वर्गको कीसीजी तर-
इकी सफ़ा या अणसमज रहेगी नहि अलबत एक
एक पुस्तक होसके ऐसा दरेक विषयोमात्र पूर्वोक्त
कारणसे थोड़े अक्षरोमे प्रदर्शित किया है उस्से तत्
तत् विषयोकी व्याख्या करनेमें इस ग्रंथ चाहीये
उतनी पुष्टी करशकेगें नहि तदपि उत्तम, मध्यम,
और कनिष्ठ सर्व वाचक अधिकारीओ स्वबुद्धि अनु-
सार तत् तत् विषयरसमें निमग्न हुवा बिना र-
हेगे नहि

इस ग्रंथमें जैन धर्मका तत्व निरूपण करनेसे
प्रथम अपन जैन कीसलीये कहेजाते है ऐसा उप-
क्रम करके " जैन " की व्याख्या जैन शब्दमे अपे-
क्षित होनेसे जैन शब्दका अर्थ तात्पर्यके साथ दुसरे
पर्याय नामो सकारण प्रश्नोत्तर रूपमें वर्णन किया है
साधु धर्म व श्रावक वर्मका व्रत, जीनेंद्र प्ररूपित
जीवादि नव तत्व वगैरे का वर्णन सविस्तर किया-
गया है दुसरा और चौथा प्रकरणमे धार्मिक और

नैतिक विषय संबंधी व्याख्यावाला गूढ रहस्यसूत्रक
 लघुवाक्यों दीया गया है वो सब प्राणीयोंको एकांत
 हीतकारी है इंग्लिशका इमीयम व अन्य जापाकी
 कहानीकी मुवाफिक ऐसा टुक वाक्यका स्मरण पू-
 र्वक उपयोग करनेमें उन्नय लोकका हित होसकेगा
 तीसरा प्रकरणमें गुरु शिष्यका संवादरूप धर्म रह-
 स्यका टुक और अति उपयोगी वर्णन कीया है प्र-
 करण पाचवेंमें सामायकादि परम् आवश्यक तिन्के
 पवित्र हेतुयुक्त संक्षेपमें वर्णन कीया है इन्के बाद
 जैनपर्व तिथियें, रात्री जोजन त्याग, पढा तो सही
 मगर विचारशुन्य रहा, नवकार महामंत्र, उत्तम गुण
 ग्रहणता, विविध विषयसंग्रह आदि विषयोंका टुकमें
 व्यान दीयागया है. अंतमें मार्गानुसारीका पैंतीस
 गुन और तत् संबंधी धर्म संग्रहकी गाथा अर्शयुक्त
 दीयागया है.

इस ग्रंथमें कहाहुवा सब विषयो अति बोधदा-
 यी होनेसे आशा है की सर्व धर्मानुरागी बंधुओ इ-
 न्का मनन करके गुरु महाराजकी प्रयासकों

सार्थक करे

इस ग्रंथ उपावनेमें मदद देनेवाले गृहस्थोंके नाम

३० शा प्रेमचंद मोतिचंद गोधावी

५ शा गुलाबचंद वजेचंद नवसारी

५ शा कीलान्नाइ पानाचंद ठाणी

१५८ नानी टोळी तरफसे हा माणेरुचंद जेठा
पालीताणा

१०० शा जेचंद नीहालचंदकी विधवा वाइ उजम
वरुनगर

७५८

उपर मुवाफीक रुपीआ दोसो अठाणु इत
ग्रंथ उपावनेमें हमको मदद मीली है लेकिन खर्च
ज्यादा हुवा है सो इस ग्रंथ फक्त मुनिमहाराज
और जैनशाळा पुस्तकालयोंके चेट दीया जायगा
दूसरे साधर्मो वधुओ ज्यादे लान ले सके इस वास्ते
इन्को मूल किमतसेही कम मूल्यसे फक्त चार आ-
नामें दीयाजायगा

(१२)

इस ग्रंथ उपावनेमें मदद देनेवाले सदगृहस्थों-
का हम अंतःकरणसे आज़ार मानते है और आशा
रखते है की इस मुवाफिक धनीको आपका धनका
सद्व्यय करे इतिशम्.

ली. प्रसिद्धकर्ता.



श्री जैनहितोपदेश भाग १ लो.

प्रकरण १ लु

श्री जैन बालहितबोधक प्रश्नोत्तर.

१ प्र. अपन जैन किसलिये कहे जाते है ?

उ श्री जिनेश्वर महाराजजीकी आज्ञा मान्य करनेसे.

२ प्र जिनेश्वर किसलिये कहे जाते है ?

उ राग, द्वेष और मोह इन्हींका सर्वथा पराजय करनेसे.

३ प्र रागकों जीत लिया जैसे कब कहेना चाहिये ?

उ जब कामविकारकों बिलकुल जीतलै तब रागकों जीतलीया कहेना डुरुस्त है

४ प्र रागका चिन्ह—महेमान क्या है ?

उ कचन (सुवर्ण जेवर रत्न वगैर परिग्रह), और कामिनी (औरत) इत्यादिके उपरसे प्रीति जाव होय सोही रागका चिन्ह है.

५ प्र. द्वेषकों कब जीतलीया कहा जावे ?

उ. जब वैर विरोधकों सब प्रकारसे त्याग दे तब द्वेषका पराजय किया कहा जावे.

६ प्र. द्वेषका चिन्ह—निशानी क्या है ?

उ. शत्रुके उपर अप्रीतिभाव और शस्त्र व-
गैरःका धारण करना सोही द्वेषका लक्षण है.

७ प्र. मोहकों जीतलीया असा कब कहाजावे?

उ. जब राग और द्वेषकारक कोइजी वस्तुमें किंचित्प्रीति मोह प्राप्त नहि होवे, निर्मल ज्ञान, और विवेककों यथार्थ (जैसा चाहिये वैसा) धारण करलै तब मोह जीत लीया कहेनाही चाहिये.

८ प्र. मोहका लक्षण क्या है?

उ. दूसरेके चित्तकों रंजित करने योग्य चे-
ष्टाओंका उपयोग करना, सो मोहकी निशानी है.

९ प्र. जिनेश्वर जगवंतके दूसरे कोनसे कोनसे परमपावन नाम है ?

उ. अरिहंत, तीर्थंकर, अर्हंत, अरुहंत, महा-
देव, विष्णु, ब्रह्मा, शिव, शंकर वगैरः जिन वी-

तरागके नाम है

१० प्र अरिहंत कहनेका प्रयोजन मुतलव क्या है?

उ काम, क्रोध, मोह, मत्सरादि जो अंतरके शत्रु वर्गकों सर्वथा हनन करनेसे अरि (अतरंग शत्रु) हत (नाश) श्रैसा विरुद पायाजाता है

११ प्र तीर्थकर कहनेका हेतु क्या है ?

उ साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका इन चारो सधरुप तीर्थकी स्थापना करनेसे (तीर्थके करनेवाले) तीर्थकर कहे है

१२ प्र अहंत कहनेका सबब क्या है ?

उ राजा, इड और योगीश्वरोंकोजी पूजने लायक होनेसे अहंत कहे जाते है.

१३ प्र अरुहंत किसलीये कहे जाते है ?

उ कर्मबीजका सर्वथा क्षय करनेसे जिस्को जन्म मरणा नहि है इस लिये अरुहंत कहे जाते है

१४ प्र महादेव कहनेका प्रयोजन क्या है ?

उ राग द्वेष और मोहका सर्वथा पराजय नाश करनेसे इस दुनियामें गिनती करते जो

जो देव मालुम होतेहै सो सो देव मात्रसें वने श्रेष्ठ देव है, इसी सबबसें महादेव-ब्रह्मदेव कहनाही लाजिम है.

१५ प्र. विष्णु कहनेका तात्पर्य क्या है ?

उ. विमल ज्ञानदर्शनसें विश्वव्यापी समस्त पदार्थ सार्थकों जाने देखें इस कारणसें विष्णु कहनाही योग्य है.

१६ प्र. ब्रह्मा कहनेका सुतलब क्या है ?

उ. निरुपम (जिस्कों कोइत्नी उपमा न दी जावे असा) मोक्ष मार्ग साधनेका सर्वोत्तम उपयोग साधनेसें अर्थात् मोक्षगमन योग्य मार्ग साधन निर्माण करनेवाले होनेसें ब्रह्मा कहेजातेहै.

१७ प्र. शिव कहनेका परमार्थ क्या है ?

उ. शिव (निरुपद्ब-मोक्ष) स्थानकों सर्वथा प्राप्त हुअे इसीसें शिव कहनाही डुरुस्त है.

१८ प्र. शंकर कहनेका सबब क्या है ?

उ. स्वर्ग, मृत्यु और पाताल यह तीन भुवनके जीव मात्रकों सुख शान्ति करनेवाले है इस सबबसें शंकर है.

१९ प्र रागके दूसरे समान पर्यायवाले कोनसे कोनसे नाम है ?

उ रति, प्रीति, स्नेह, प्रतिबंध, माया, ममता वगैर नाम है

२० प्र द्वेषमे दूसरे समान पर्यायवाले नाम कोनसे है सो बतलाइये ?

उ मत्सर, अरति, अप्रीति, अरुचि, कुराग, कलेश, विरोध वगैर द्वेषकी समानता दिखलाने वाले नाम है

२१ प्र मोहके दूसरे समान पर्यायवाचक कोनसे नाम है ?

उ मूर्छा, अहता, ममता, ममत्व, परिग्रह इत्यादि मोहकेही नाम है

२२ प्र जैन दर्शनमें गुरु किसका कहने चाहिये ?

उ श्री जिनेश्वर प्रणीत (प्रज्जुके कहे हुवे) तत्व रहस्यका जानूनेवाले और ज्ञव्य जीवोंको हितका उपदेश देनेमें हमेशा तत्पर—उत्साहवंत हो उसीकुही गुरु कहने योग्य है

२३ प्र जैन दर्शनमें गुरुके पर्याय शब्द कोनसे कोनसे है ?

१. उ. साधु, निर्ग्रन्थ, मुमुक्षु, कृमाश्रमण, मुनि, संयमी आदि जैन पंथानुगामी गुरुके नाम है.

२४ प्र. साधु कहनेका प्रयोजन क्या है ?

उ. तप, जप, संयमके बलसे आत्म साधन करनेमें तत्पर रहते हैं इसीलिये साधु कहे जाते हैं.

२५ प्र. निर्ग्रन्थ कहनेका मुतलब क्या है ?

उ. ग्रन्थ अर्थात् बाह्य और अंतर यह दोनों प्रकारके परिग्रहकों बिलकुल त्याग दिया. बोरु दिया, यावत् निस्पृहता धारण की इस सबवसे निर्ग्रन्थ-ग्रन्थ रहित कहाते हैं.

२६ प्र. मुमुक्षु कहनेका कारण क्या है ?

उ. जन्म, जरा और मृत्यु विगरके मोक्ष सुखकीही केवल अजिलाषा रखकर दूसरी सब आशा तृष्णाकों उखेर माली, इस लिये मुमुक्षु पदकेही अधिकारी है.

२७ प्र. कृमाश्रमण कहनेका तात्पर्य कोनसा है ?

उ. कृमा प्राधान्य श्रमण—मोक्षमार्ग साधन प्रयत्न करनेमें विशेष प्रकारसे तत्पर रहनेसे कृमाश्रमण कहे जाते हैं.

१८ प्र. मुनि कहनेका प्रयोजन क्या है ? सो बतलाओ ?

उ अखिल-समस्त जगत्का तत्व (स्वरूप) मुणवासें-सम्यग् जात्रेसं मुनि कहाते है

१९ प्र सयमी कहनेका प्रयोजन क्या है ?

उ सयम (साधुधर्म दीक्षा) सम्यक् पालनेसें सयमी कहे जाते है.

२० प्र श्री जिनेश्वर जगवानने धर्म मोक्ष मार्ग कैसा बतलाया है ?

उ सम्यक् ज्ञान, दर्शन (श्रद्धा) और चारित्र विवेकरूप धर्म मोक्ष मार्ग बतलाया है.

२१ प्र उपर बतलाया गया जो धर्म उन्हेकु पालनेके लीये कौन अधिकारी (लायक) है ?

उ क्षुब्धनादि इक्कीस दोष रहित, मध्यस्थतादि गुणवत हो, सोही धर्म मोक्ष मार्गका सच्चा अधिकारी है

२२ प्र. धर्मके अधिकारीमें सामान्य प्रकारसें कोनसे कोनसे गुण होने चाहिये? किंवा होतेहै?

उ. १ गंजीर आशय, २ सुंदर शरीर, ३ जी-

तल स्वजाव, ४ लोकप्रिय, ५ अक्रूर, ६ पापजीरु,
 ७ निर्द्वन्द्व, ८ दाक्षिण्यतावंत, ९ लज्जावंत, १०
 दयावंत, ११ निष्पक्षपाती, १२ गुणरागी १३ स-
 त्यवक्ता, १४ धर्मि कुटुंबवाला, १५ दीर्घदर्शि,
 १६ सुजान, १७ वृद्धसेवी, १८ विनयवंत, १९
 कृतज्ञ, २० परोपकारी और चालाक यह गुण
 जिसमें मौजूदहो, सोही धर्मका अधिकारी जाना.
 ३३ प्र. धर्म कितने प्रकारके है ?

उ. गृहस्थ धर्म और यति—साधु धर्म यह दो
 प्रकारके है.

३४ प्र. गृहस्थ धर्म किसकुं कहते है ?

उ. गृह (घर) वासमें रहकर श्री जिनेश्वर
 देवोक्त तत्व श्रद्धापूर्वक बन शके, तैसे व्रत, प-
 चखाण करे उस्कों गृहस्थ धर्म कहा जाता है.

३५ प्र. साधु—यतिधर्म किसकुं कहते है ?

उ. गृहस्थावास त्यागकर पांच महाव्रत अं-
 गिकार करके रात्रिज्ञोजन त्याग व्रत आदिके
 लीये सख्त नियम धारन करके गृहस्थोकों बोध
 देना सो साधुधर्म कहा जाता है.

३६ प्र पाच महाव्रत कौनसे है ?

उ बिलकुल जीवहिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह त्याग यह पाच महान् व्रत है

३७ प्र. बिलकुल जीवहिंसाका त्याग किस रीतिसें पालना चाहिये ?

उ किसी जीवकों राग छेपसें नाश करना नहिं, नाश करानेकी सम्मतीजी न दें और जो कोइ सख्त नाश करता हो उसकी अनुमोदना (अच्छा करता है ! ठीक किया है ! असा कहना) जी मन वचन और कायासें न करे, नुस्को अहिंसाधर्म पालन करा कहा जाता है

३८ प्र बिलकुल जूठ बोलनेका त्याग किस प्रकारसें पाले ?

उ क्रोध, मान, माया, लोभ, जय या हास्यसें शोभाजी जूठ न बोले

३९ प्र बिलकुल मालधनीके दिये शिवाय कुछ जी चीज न लेवे वह अदत्तादान लेनेका नियम किस रीतिसें पाले ?

उ. जिनेश्वर जगवान्की या गुरुजीकी आज्ञा विरुद्ध कुञ्चनी चीज लेवे देवे नहि. अगर उन्हींकी आज्ञा हुए बादनी जो मालधनीकी रजा न मिली हो तो कुञ्चनी चीज लेवे देवे नहि. अगर मालधनीकी रजा मिलचूकी हो मगर सच्चित्त या मिश्र वस्तु हो तो लेवे नहि, उस्कों अदत्तादान विरमण व्रत पालन किया कहाजाता है. ४७ प्र. सर्वथा मैथुन त्याग—ब्रह्मचर्यव्रत किस प्रकारसें पालना ?

उ. देव, मनुष्य और तिर्यंच संबंधी विषय क्रीडा बिलकुल त्यागदे, किंवा पांचों इंद्रियोंके विषयोंको कब्ज करे. आप उन्हींको वश्य न हो, उस्कों सर्वथा मैथुन त्याग किया कहा जावे.

४१ प्र. सर्वथा परिग्रह त्याग किस तरांहसें पालन करे ?

उ. जोसें मूर्ख हो तैसी जारे या हलकी (सचेत अचेत या मिश्र) वस्तुका संग्रहही न करें तब बिलकुल परिग्रह परित्याग किया कहा जावे.

४२ प्र सर्वथा रात्रि जोजनका त्याग किस प्रकारसे पाले ?

उ कोइजी प्रकारका आहार, सूर्योदय हुए प्रथम या सूर्यास्त हुए बाद न खावे (वास्तविक रीति तो यह है कि सूर्यके उदय होने बाद दो घन्टी और सूर्य अस्त पहिलेकी दो घन्टी त्याग देनी योग्य है नहितो रात्रि जोजनका ज्ञाग लगता है

४३ प्र उपर कहे हुए व्रतोंको महाव्रत कहनेका सबब क्या है ?

उ गृहस्थके अणुव्रतकी अपेक्षासे वो महाव्रत कहे जाते है किवा महान् शूरवीर मनुष्यसे ही सेवन कीये जाते है (रूपोक—कातरसे सेवन न कीये जावे) इसीलिये उन्हेको महाव्रत कहते है

४४ प्र अणुव्रत किसको कहते है ?

उ अणु अर्थात् छोटा मुनिके महान् व्रतोंस बहोतही कम—अल्प होनेसे अणुव्रत कहे जाते है

४५ प्र गृहस्थके अणुव्रत कोनसे कोनसे है ?

उ स्थूल (बन्नी) हिंसा, जूंठ, चोरी, मैथुन-

का त्याग और परिग्रहका प्रमाण रखे, वह गृह-हस्तके पांच अणुव्रत है.

४६ प्र. स्थूल हिंसासें बूटजाना वो कैसे ?

उ. निरपराधी, त्रस जीवकी निष्कारण जान बूझके हिंसा न करे, सो स्थूल हिंसासें मुक्त होना कहा जाता है.

४७ प्र. स्थूल जूठसें बचजाना सो क्या ?

उ. कन्या-पशु-भूमि संबंधी नाइक जूठ बोलना, कोर्ट अदालतमें जाकर जूठी गवाह देना और खोटे दस्तावेज बनाना यह पांच वमे जूठोंसे अलग होजाना उस्कुं स्थूल असत्य विरमण व्रत कहते है.

४८ प्र. स्थूल अदत्त-चोरीका त्याग व्रत किस तरह है ?

उ. जान बूझकर चोरी करनी, या चोरीका माल खरीदना, पिराया माल हजम करजाना, विश्वासघात करना, अच्ची बूरी चीजोंको एकत्र मिलाना और जकात-दाणचोरी करना. मतलबमें जिस्से राजदंमका फ़य प्राप्त होय सोदी

चोरी कही जाती है वह उक्त कथित पाच जेद
अदत्तका त्याग करे

४९ प्र स्थूल मैथुन त्याग किसको कहते हैं ?

उ. परस्त्री, वैश्या, विधवा, या बालकुमारी
इन्हींके साथ अत्याचार-सज्जोग करनेका बिल-
कुल त्याग करके अपनी विवाहिता स्त्रीमें सतोष
करे (स्त्री अपने पतिमें सतोष करे) तो स्थूल
मैथुन त्याग व्रत कदा जाता है.

५० प्र. परिग्रह प्रमाण किस्को कहा जाता है ?

उ. धन, धान्य वगैरः नव प्रकारके परिग्रहका
प्रमाण अर्थात् 'इतनेसे ज्यादा मेरे स्वज्जोगार्थ
न चहिये' ऐसा नियम रस्के और प्रमाणसे
ज्यादा हो तो शुद्ध धर्म मार्गमें व्यय कर देवे,
उस्को परिग्रह प्रमाण व्रत कहते हैं

५१ प्र. यह पाच अणुव्रतके शिवाय गृहस्थको
बूसरे कोनसे व्रत होते हैं ?

उ तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत यह
मिलकर बारह व्रत होत है

५२ प्र तीन गुणव्रत कोनसे कोनसे है

उ. दिशा (जाने आनेका) प्रमाण, जोगो-पजोग, और अनर्थ दंभ यह तीन गुणव्रत संज्ञा धारक है ?

५३ प्र. दिशा प्रमाण किस्कों कहते है ?

उ. पूर्व, पश्चिम उत्तर दक्षिण यह चार दिशा और इशान, वाव्य, नैऋत्य, अग्नि यद् चार विदिशा, और उपर नीचे जाने आनेका संबंधमें धर्म कार्य शिवाय अपने कार्य निमित्त जाने आनेका प्रमाण प्रतिबंध रखे उस्कों दिशा प्रमाण कहते है.

५४ प्र. जोगोपजोग विरमण किस्कों कहते है ?

उ. पंड्ह कर्मादान महापाप व्यापारका त्याग करे, और चौदह नियम धारण करे उस्कों जोगोपजोग विरमणव्रत कहते है.

५५ प्र. अनर्थ दंभ विरमण किस्कों कहते है ?

उ. पाप कार्यके साधनजूत-कुब्धारा, हल, मूशल, चक्री वगैरः तैयार करके दूसरेकों न देवे, पापका उपदेश न देवे, आत्तरौड्ध्यान न ध्यावे, नाटक चेटक-खेल तमासे जामोकी नकल वे-

श्याओंका नाच न देखें, और हिंसक-मासाहारी जीवोको व्यापार अर्थे न पोपन करे अर्थात् पापी जीवोको न पाले नुस्को अनर्थदरु विरमण व्रत कहते है

५६ प्र चार शिक्षाव्रत कोनसे कोनसे है ?

उ सामायिक, दिशावगासिक, पौषध और अतिथि सविज्ञाग यह चार शिक्षाव्रत कहेजाते है ,

५७ प्र सामायिक किस्को कहते है ?

उ संकल्प निश्चयपूर्वक समताज्ञावमें पाप व्यापारको त्याग कर जघन्य दो घनी और उत्कृष्ट जीवन पर्यंत कायम रहे नुस्को सामायिक व्रत कहते है

५८ प्र दिशावगासिक किस्को कहते है ?

उ ठठे व्रतमें धारण की हुइ दिशाओंका सं-क्षेप करना, और मर्यादामें रहकर धर्मध्यान से-वन करना उसीको दिशावगासीक व्रत कहते है

५९ प्र पौषधव्रत किस्को कहाजाता है ?

उ जीस्में धर्मकी पुष्टि-वृद्धि हो वह पौष-धके चार प्रकार है आहारपौषध, (उपवास आ-

शंखिले वगैरः १, शरीरसत्कार त्याग पोषण्ड २, ब्रह्मचर्य पोषण्ड ३, और पाप व्यापार परिहार करनेरुप पोषण्ड ४, यह चार जेदहै सो उपयोगमें लेवे उस्कों पौषधव्रत कहाजाता है.

६० प्र. अतिथि संविज्ञाग सो क्या ?

उ. अतिथि याने अणगार साधुजी उन्होंकों आहार पाणी व्होराकर सुपात्र दान देकर जोजन करे सो अतिथि संविज्ञाग कहाजाता है.

६१ प्र. सामान्य प्रकारसँ धर्मके कितने जेद है ?

उ. धर्मके चार जेद है.

६२ प्र. वह चार जेदोंके क्या नाम है ?

उ. दान, शील, तप और ज्ञाव यह चार धर्मजेदाज्ञिधान है.

६३ प्र. सम्यक्ज्ञान किस्कों कहते है ?

उ. सर्वज्ञ श्रीजिनेश्वर जगवानजीने फरमाये हुवे जीवाजीव नव तत्वोंकों यथास्थित जान्ना उस्कों सम्यक्ज्ञान कहाजाता है.

६४ प्र. सम्यक्दर्शन (समकित) किस्कों कहते है ?

उ. श्री जिनें परमात्माजीने फरमाये हुवे

तत्त्वोपर पूर्ण प्रतीति—श्रद्धा—आस्ता धारण करे
और दूसरे पाखन्दी पोपलीलाधारीओंकी भ्रमजालमें
न फसे उसको सम्यग्दर्शन कहा जाय

६५ प्र सम्यक्चारित्रविवेक किस्से कहा जायोग्य है ?

उ तत्त्वकों यथार्थ समझकर सद्वृत्तें हित-
कारी मार्गकों ग्रहण करें और अहितकारी मा-
र्गकों त्यागदे, सो विरति किवा संयम कहा जाता है

६६ प्र सर्वज्ञ श्री जिनेश्वर जगवानजीने प्ररूपे हुए
कोनसे कोनसे तत्त्व है ?

उ जीव १, अजीव २, पुण्य ३, पाप ४,
आश्रव ५, संवर ६, वध ७, निर्जरा ८, और
मोक्ष ९ यह नव तत्त्व श्रीदेवाधिदेवने फरमाये है

६७ प्र जीवका लक्षण क्या है ?

उ ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य, और उ-
पयोग

६८ प्र अजीवका लक्षण क्या है ?

उ जीवके लक्षणोंसे जो विपरित लक्षणवत
हो सो अजीव है

६९ प्र. जीव कितने हैं ?

उ. सब जातिके मिलकर अनंत जीव हैं.

७० प्र. जीवके उत्पत्तिस्थान—योनिके कितने प्रकार हैं ?

उ. सब जातिकी मिलकर ८४ लक्ष हैं.

७१ प्र. जीवायोनि कहनेका ज्ञावार्थ क्या है ?

उ. जीवका उत्पत्तिस्थान अर्थात् वर्ण, गंध, रस, और स्पर्श जीस्के समान हो तैसे अमुक जातिके उत्पत्तिस्थान उसीकुं जीवयोनी कही जाती है.

७२ प्र. अजीव पदार्थ कौनसे कौनसे हैं ?

उ. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और कालद्रव्य यह पांचों पदार्थ अजीव तत्वदर्शि हैं.

७३ प्र. धर्मास्तिकायका स्वज्ञाव क्या है ?

उ. जीवकों और पुद्गलकों चलते समय सहाय-जून होनेका धर्मास्तिकायका स्वज्ञाव है.

७४ प्र. अधर्मास्तिकायका स्वज्ञाव क्या है सो बतलाओ ?

उ. जीवकों और पुद्गलकों स्थिर रहते सहाय-जून—मद्दगार होनेका अधर्मास्तिकायका स्वज्ञाव है.

७५ प्र आकाशास्तिकायका क्या स्वभाव है ?

उ जीवकों और पुद्गलादिक इन्द्रियों रहनेके लीये अवकाश देनेका आकाशास्तिकायका स्वभाव है

७६ प्र पुद्गलका क्या लक्षण है ?

उ शब्द, अघकार, उद्योत, प्रज्ञा, गान्, आताप, उन्मी, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श यह पुद्गलके लक्षण है

७७ प्र कालके लक्षण कोनसे है ?

उ समय लक्षण (वस्तुका नया पुराना ज्ञाव होनेका साधन रूप)

७८ प्र पुण्यका क्या लक्षण है ?

उ सुख प्राप्त होनेका कारणभूत शुभ कर्म प्रकृतिका सचय करना सोही पुण्यका लक्षण है.

७९ प्र पापका लक्षण क्या है ?

उ दुःख (कटुक फल) प्राप्त होनेका कारणभूत अशुभ कर्मका सचय करना सो पापकाही लक्षण है

८० प्र आश्रवका क्या लक्षण है ?

उ शुभ किंवा अशुभ कर्मका आवागमन होनेका द्वार इन्द्रिय कषाय वगैर आश्रवका लक्षण है

८१ प्र सवरका क्या लक्षण है ?

उ. आतेहुए कर्मोंको रूकानेका साधन—आश्रव-
धारकों बंध करनेरूप सोही संवरका लक्षण है.

७२ प्र. बंधका क्या लक्षण होता है ?

उ. दूध और पानीकी तरह जीव कर्मका एकत्र
होना सोही बंधका लक्षण है.

७३ प्र. मोक्षका लक्षण क्या है ?

उ. कर्म बंधनसें आत्माको सर्वथा मुक्त होजाना
सो मोक्षका लक्षण है.

७४ प्र. निर्जराका लक्षण क्या है ?

उ. कर्म बंधनसें कितनेक अंशोंसें मुक्त होना सो
निर्जराका चिन्ह है.

७५ प्र. पुण्य संचय करनेका उपाय क्या है ?

उ. शुद्ध राग प्रकृतिभावसें सुपात्र दान, प्रभुपूजन
साधर्मियोंकी सेवना, तीर्थ संरक्षण, शास्त्र श्रवण,
और जीवदया वगैरः पुण्य एकत्र करनेके उपाय-
रूप है.

७६ प्र. पाप संचय करनेका मार्ग कोनसा है ?

उ. वीतराग प्ररूपित मार्गसें विरुद्ध वर्तन चलाना
विषयरसमें आनंदित रहना, निर्दयता और दुष्ट अ-

ध्वसाय आर्त्तरोड्ध्यान वगैर पापसग्रह करनेका ही मार्ग है

७७ प्र आश्रव कोनसे कारणोसे होता है ?

उ पाचौं इन्द्रिय, चारो कपाय, पाचौं अणुव्रत और तीन योग वगैर. आश्रवकेही कारणज्जुत है

७८ प्र संवरका लाज्ज कहेसे प्राप्त होता है ?

उ पाच समिति, तीन गुप्ति, वाइस परिसह, दश प्रकारके यतिधर्म, वारह ज्ञावना और पाच प्रकारके चारित्र इन्द्रोके संयोगसे संवरका लाज्ज-फायदा हासिल होता है

७९ प्र वध कितने प्रकारसें और किस प्रकारसें होता है ?

उ चार प्रकारसें; अर्थात् प्रकृति, स्थिति, रसें और प्रदेशरूप मोदक (लक्ष्म) के दृष्टातसें जानना

८० प्र मोक्ष कितने प्रकारसें होता है ?

उ पंड्ह जेदसें सिद्ध होते है अर्थात् तीर्थ, अतीर्थ, जिन, अजिन, गृहस्थ, अन्यलिगी, स्वलिगी, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, प्रत्येकबुद्ध, स्वयंबुद्ध, एकसिद्ध अनेकसिद्ध और बुद्धबोधी यह पंड्ह जेद सिद्धके है

ए१ प्र. निर्जरा किस रीतिसें होशकती है !

उ. बारह प्रकारका तप याने ठ वाह्य ठ अभ्यंतर मिलकर जो बारह प्रकारका तप है सो सेवन करनेसें निर्जरा होती है.

ए२ प्र. पांच इंद्रियें कौनसी कौनसी है ?

उ. स्पर्श इंद्रिय (आंख) रसेंद्रिय, (जीभ) घ्राणेन्द्रिय, (नाक) नेत्रेन्द्रिय (चक्षु) और श्रोत्र इंद्रिय (कान) यह पांच इंद्रिय है.

ए३ प्र. चार कषाय कौनसे कौनसे है ?

उ. क्रोध, मान, माया और लोभ यह चार कषाय है.

ए४ प्र. अव्रत कौनसे कौनसे है, सो बतलाइये ?

उ. हिंसा, असत्य, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह यह पांच अव्रत है.

ए५ प्र. पांच अव्रत कौनसे कहे जाते है ?

उ. प्राणातिपात (जीवहिंसा), मृषावाद (जुठ), अदत्तादान (चोरी), मैथुन और परिग्रहरूप यह पांच अव्रत है.

ए६ प्र. तीन योग कौनसे कौनसे है ?

उ मनयोग, वचनयोग और काययोग यह तीन है
 ९७ प्र लेश्याका मायना क्या और वह कौनसी
 कौनसी है ?

उ उक्त कपायके साथ जीवके शुभांशुज अध्व-
 वसाय विशेष—कृष्ण नील, कापोत, तेजो, पद्म और
 शुक्ल यह ष लेश्याए है

९८ प्र ध्यान किसको कहते है और कौनसे कौनसे है ?

उ चित्तकी एकाग्रतासे हुआ अवलवन विशेष—
 आर्त्त, सौद्र, धर्म और शुक्ल यह चार ध्यानका जेद है
 ९९ प्र समिति किसको कहते है और कौनसी
 कौनसी है ?

उ समिति अर्थात् सम्यक् प्रवर्त्तन (वह वह वा-
 बतमें उपयोग) श्या, ज्ञापा, एषणा, आदान निहे-
 पना और पारिष्ठापनिकारूप पाच है

१०० प्र गुप्ति किसको कहते है और कौनसी कौनसी है ?

उ गोपन करना-समालना-सरक्षण करना यह
 गुप्ति शब्दका अर्थ—मतलब है वह मन, वचन और
 काया सबधी तीन मनगुप्ति वगैर है

१०१ प्र परिसहका मायना क्या है और कौनसे

कौनसे है ?

उ. समस्त प्रकारसें सहन करने योग्य हो सो परिसह कहा जाता है और वह वाइस प्रकारके है-
 झूख, तृपा, ठंढी, ताप, मंस, अचेल, अरति, स्त्री, चर्या,
 निषेधिका, सय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाज, रोग,
 तृणस्पर्श, मळ, सत्कार, प्रज्ञा, और अज्ञान व-
 गैरः अनुकुल प्रतिकुल दोनु प्रकारके है.

१०२ प्र. दशविध यतिधर्म किस प्रकारसें है ?

उ. क्लमा, मृडुता, सरलता, निर्लोभता, तपस्या,
 संयम, सत्य, शौच, (पवित्रता), निष्परिग्रहता और
 ब्रह्मचर्य यह दश प्रकारसें यतिधर्म है.

१०३ प्र. वारह प्रकारकी ज्ञावनाओ किस तरह है ?

उ. अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व,
 अशुचि, आश्रव, संवर, निज्जरा, लोकस्वरूप, बोधी
 दुर्लज और धर्मज्ञावना.

१०४ प्र. चारित्रिके पांच प्रकार कौनसे है ?

उ. सामायिक, उदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि
 सूद्धम संपराय अने यथाख्यात यह पांच प्रकारके है.

१०५ प्र. कर्मका प्रकृतिबंध किसको कहते है और

वह किस तरह है ?

उ प्रकृति अर्थात् स्वप्नाव, जैसे जुदे जुदे इ-
व्योंका स्वप्नाव जिन जिन होता है, तैसे कोइ कर्मका
स्वभाव, आत्माके ज्ञान गुणकों और किसीका दर्श-
नादिकको आच्चादन करनेका स्वप्नाव होता है तैसा
बध, सो प्रकृतिबंध कहा जाता है

१०६ प्र मूल कर्म प्रकृति कितनी है और उत्तर (जेद)
प्रकृति कितनी है ?

उ मूल-मुख्य कर्म प्रकृति ७ है और उत्तर प्र-
कृति १५७ है

१०७ प्र मूल प्रकृतिके नाम कौनसे कौनसे है ?

उ ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मो-
हनीय, नाम, आयु, गोत्र और अतराय यह आठ
मूल प्रकृति है

१०८ प्र उत्तर प्रकृति १५७ किस प्रकारसें होती है ?

उ ज्ञानावरणीयकी ५, दर्शनावरणीयकी ५,
वेदनीयकी २, मोहनीयकी ७, नामकी १०३, आ-
युकी ४ गोत्रकी ७, और अतरायकी ५, यह सब
मिलकर १५७ होती है

१०९ प्र. ज्ञानावरणीय वगैरः कर्मोंका केसा स्वप्नाव है?

उ. आत्माका ज्ञान दर्शनादिक गुणोंको आच्छादन करनेका—ठांप देनेका स्वप्नाव है.

११० प्र. ज्ञानावरणीय कर्म कैसा कैसा ज्ञानको किस प्रकारसे आच्छादन करता है ?

उ. मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवल ज्ञानको यह कर्म वस्त्रकी तरांडसे ठांप देता है.

१११ प्र. मतिज्ञानादिक पांचों ज्ञानके मिलकर कितने जेद हैं ?

उ. मतिके ९८, श्रुतके १४, अवधिके ६, मनःपर्यवके ९ और केवलका १ यह सब मिलकर ५१ जेद है.

११२ प्र. दर्शनावरणीय कर्म किस प्रकारसे दर्शन गुणको आच्छादन करता है ?

उ. प्रतिहारी (पोलिया) की तरांडसे.

११३ प्र. ज्ञान और दर्शन गुणमें क्या तफावत है ?

उ. आत्माका ज्यादा उपयोग सो ज्ञान, औ सामान्य उपयोग सो दर्शन है.

११४ प्र. दर्शनके कितने जेद है ?

उ. चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल दर्शन मि-

लकर चार जेद होते है.

११५ प्र दर्शनावरणीयके ए जेद कोनसे कोनसे है ?

उ चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल दर्शनावरणीय यह ४ और निष्ठा, निडानिष्ठा, प्रचला, प्रचला-प्रचला और शिण्डी-यह ए जेद है

११६ प्र वेदनीय कर्मका कैसा स्वभाव है ?

उ जीवकों शाता अशाता ज्ञुक्तानेका स्वभाव है

११७ प्र वेदनीय कर्मके कितने जेद है ?

उ शाता वेदनीय और अशाता वेदनीय

११८ प्र वेदनीय किस प्रकारसे कौनसे गुणकों वापता है ?

उ सहेतसे लिप्त हुइ तलवार और साफ तलवार चाटनेकी तराहसे शाता, अशाता वेदनीय कर्म आत्माका अव्याबाध सुख गुणकों आञ्जादन करता है

११९ प्र मोदनीय कर्मका स्वभाव कैसा है ?

उ. मदिराकी तराह आत्माका सम्यकत्व और चारित्र गुणकों आञ्जादन करनेका स्वभाव है

१२० प्र. मोदनीय कर्मको मुख्य कितने और कौनसे

ज्ञेद है ?

उ. दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय यह दो ज्ञेद है.

१२१ प्र. दर्शन मोहनीय कर्मके कितने और कौनसे ज्ञेद है ?

उ. समकित मोहनीय, मिश्रमोहनीय और मि-
श्रयात्व मोहनीय यह तीन ज्ञेद है.

१२२ प्र. चारित्र मोहनीय के मुख्य ज्ञेद कितने है ?

उ. कषाय मोहनीय और नोकषाय मोहनीय
यह २ ज्ञेद है.

१२३ प्र. कषाय मोहनीयके कितने ज्ञेद है ?

उ. अनंतानु बंधी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी
और संज्वलन ज्ञेदसें क्रोध, मान, माया और लोभ
यह चार चार ज्ञेद मिलाके १६ ज्ञेद होते है.

१२४ प्र. कषाय किसको कहते है ?

उ. जिससे संसारका लाज होता है सोही क-
षाय कहा जाता है.

१२५ प्र. नोकषाय किसको कहते है ?

उ. कषायके सहचारी, कषायको पैदा करे सो

नोकपाय कहा जाता है

१२६ प्र नोकपाय मोहनीयके कितने जेद है ?

उ पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद यह तीन वेदमोहनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, जय, और डगगा यह षट् हास्यादि मोहनीय मिलकर ए नोकपाय मोहनीयके जेद है

१२७ प्र नाम कर्मका स्वज्ञाव कैसा है ?

उ चित्रकारके समान विविध प्रकारकी आकृतिये धारण करके आत्माका अरूपी गुणको ग्राह्य देनेका स्वज्ञाव है

१२८ प्र नाम कर्मके मुख्य जेद कितने है ?

उ शुद्ध नामकर्म और अशुद्ध नाम कर्म यह दो जेद है

१२९ प्र शुद्ध नाम कर्मकी शोभी प्रकृति कौनसी कौनसी है ?

उ उत्तम संघयण वा सस्थान, उत्तम वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श, सौजाग्य, आदेय, प्रत्येक, अस्त, वादर, पर्याप्त स्थिर और तीर्थकर नाम कर्म वगैरा शुद्ध नाम कर्मकी प्रकृतिये है.

१३० प्र. अशुभ कर्मकी थोड़ी प्रकृतिये कौनसी कौनसी है ?

उ. पूर्वोक्त प्रकृतिसे विपरीत, साधारण, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, अस्थिर प्रमुख है.

१३१ प्र. सब मिलकर नाम कर्मकी कितनी प्रकृति है?

उ. १०३ है प्रकारांतरसे ४२, ६७ और ९३ ज्ञी है.

१३२ प्र० आयुष्य कर्मका स्वभाव कैसा है ?

उ० कैदखाना जैसा आयुकर्मका स्वभाव होनेसे आत्माका अक्षय गुणकों आच्छादन करके तिन्हकों चार गतिके अंदर भ्रमण कराता है.

१३३ प्र. आयुष्य कर्मके कितने जेद है ?

उ. देव आयु, मनुष्य आयु, तिर्यच आयु और नरक आयु यह चार जेद है.

१३४ प्र. गोत्र कर्मका कैसा स्वभाव होता है ?

उ. कुंजारका घना जैसा उंचा नीचा होनेसे, आत्माका अगुरु लघु स्वभावकों ठांपनेका स्वभाव है.

१३५ प्र. गोत्र कर्मके कितने जेद है ?

उ. उच्च गोत्र और नीच गोत्र यह दो जेद है.

१३६ प्र. गोत्रकों घनेकी उपमा किस रीतिसे घट

शकती है ?

उ डुध, घीका घना प्रशंसापात्र है और मटि-
राका घना निदापात्र होता है इसलिये

१३७ प्र अतराय कर्मका स्वप्नाव कैसा होता है ?

उ खजानचीके समान स्वप्नाव होनेसे वह
आत्माकी स्वप्नाविक दानादिक शक्तिकों आच्छादित
करता है

१३८ प्र. अतराय कर्मके कितने जेद होते है ?

उ दानातराय, लाजातराय, जोगातराय, उप-
जोगातराय और वीर्यातराय यह पाच प्रकार है
(यहातक सब स्वप्नाव बध के सबधसे प्रसंगो-
पात कुठ कहा है अब किचित् कालमान समुज्ज-
नेके लिये कहते है)

स्थितिबध

१३९ प्र समय, बारीकमें बारीक बरतका नाम
माप है

१४० प्र आवली, असंख्य समयकी होती है

१४१ प्र कुल्लकजव, २५६ आवलीसें होते है

१४२ प्र. श्वासोश्वास, १७ सें ज्यादा कुल्लकभव व्यतीत होनेसें होता है.

१४३ प्र. सुहूर्त्त-१६७७७२१६ आवलि, किंवा ३७७३ श्वासोश्वास प्रमाण होता है.

१४४ प्र. सुहूर्त्त-दो घन्ती वा ४७ मीनीटका होता है.

१४५ प्र. अहोरात्री-३० सुहूर्त्त वा ६० घन्तीका होता है.

१४६ प्र. पक्ष, महिना-१५ और ३० अहोरात्रीसें होता है.

१४७ प्र. ऋतु-दो महीनेकी होती है. तैसी ऋतु दर सालमें षः होती है. (वर्षा, शरद, हेमंत, शिशिर, वसंत और ग्रीष्म यह ष ऋतु है.)

१४७ प्र. अयन-दो महिनेका होता है. (दक्षिणायन और उत्तरायण.)

१४८ प्र. वर्ष-बारह महीनेका होता है.

१५० प्र. पूर्वांग, ८४ लक्ष वर्षका होता है.

१५१ प्र. पूर्व, ८४ लक्ष पूर्वांगका होता है.

१५२ प्र. पड्योपम, असंख्यात पूर्वका होता है.

१५३ प्र. सागरोपम-दश कोनाकोरु पड्योपम व्यतीत होनेसें होता है.

- १५४ प्र उत्सर्पीणी दश कोनाकोनी सागरोपमकी होती है
- १५५ प्र अवसर्पीणी-दश कोनाकोनी सागरोपम व्यतीत होवे तब पूर्ण होती है
- १५६ प्र कालचक्र-२० कोनाकोनी सागरोपमका वा वारह आरेका होता है
- १५७ प्र पुञ्ज परावर्तन-अनंत कालचक्र गयेमे होता है
- १५८ प्र ज्ञानावरणीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति-३० कोनाकोनी सागरोपमकी है
- १५९ प्र दर्शनावरणीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति-३० कोनाकोनी सागरोपमकी है
- १६० प्र वेदनीय कर्मकी " " "
- १६१ प्र अंतराय कर्मकी " " "
- १६२ प्र मोहनीय कर्मकी " ७० "
- १६३ प्र नामकर्मकी " २० "
- १६४ प्र गोत्रकर्मकी " " "
- १६५ प्र आयुकर्मकी " ३३ साग-

रोपमकी है.

१६६ प्र. वेदनीय कर्मकी जघन्य स्थिति—१२ मुहूर्तकी होती है. कितनेक आचार्य अंत मुहूर्तकीजी कहते है.

१६७ प्र. नामकर्मकी " " "

१६८ प्र. गोत्रकर्मकी " " "

१६९ प्र. शेष कर्मोंकी " अंतमुहूर्तकी ही है.

१७० प्र. देव, नारकीका जघन्य आयुष—१० हजार वर्षका है.

१७१ प्र. अनुत्तर विमानवासि देवका उत्कृष्ट आयु—३३ सागरोपमका होता है.

१७२ प्र. सातमी तमःतमप्रजा नामकी नारकीका " " "

१७३ प्र. युगतीये मनुष्यका उत्कृष्ट आयु—३ प-
ल्योपमका है.

१७४ प्र. संसुर्विम मनुष्यका जघन्य उत्कृष्ट आयु—
अंतमुहूर्तका है.

१७५ प्र. चतुरींशिका उत्कृष्ट आयु—४ महीनेका होता है.

- १७६ प्र तेरिडियका " ४९ दिनका होता है
 १७७ प्र वेरिडियका उत्कृष्टायु १२ वर्षका होता है
 १७८ प्र पृथिवीकायका ,, २२००० वर्षका होता है
 १७९ प्र अप्कायका ,, ७००० वर्षका
 १८० प्र वायुकायका ,, ३००० वर्षका
 १८१ प्र प्रत्येक वनस्पतिका ,, १०००० वर्षका
 १८२ प्र अग्नि-तेजकायका ,, ३ अहोरात्रिका होता है

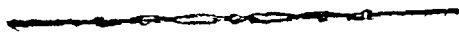
रसवध

- १८३ प्र कर्मका रस-शुद्ध और अशुद्ध ऐसे दो प्र-
 कारका होता है सो हरएक मद्, मंदतर और
 मंदतम, नैसेही तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम
 प्रकारसे होता है
 १८४ प्र शुद्धरस, गन्नेका जैसा मीठा होता है और
 अशुद्ध रस नींबूके जैसा कटुवा होता है
 १८५ प्र कपायकी मद्धतासे शुद्धरस-तीव्र, तीव्रतर
 वा तीव्रतम, और अशुद्धरस मद्, मद्धतर वा मद्-
 तम वावाजाता है और कपायकी तीव्रतासे तो
 शुद्धरस मद्, मद्धतर वा मद्धतम, और अशुद्ध

रस तीव्र, तीव्रतर वा तीव्रतम बांधा जाता है। एक ठाणिया, दो ठाणिया, त्रि ठाणिया और चउ ठाणिया रस ज्ञी सोही कहाजाता है याने वह अनुक्रमसें शुजाशुज रसकी तीव्रता दर्शाता है। कषायके अज्ञावसें कर्मबंधके रसका अज्ञाव होता है।

प्रदेशबंध.

१८६ प्र. अनंता परमाणु निष्पन्न स्कंध कार्मण वर्गणा योग्य होता है. तेसे अनंत स्कंधकी बनी हुइ कर्म वर्गणा होती है तैसी अनंत कर्म वर्गणा प्रतिक्षण (समय समय) जीव ग्रहण करता है.



प्रकरण दूसरा.

उपदेश सार.

१ जीवदया-इरहम्मेशा जयणा पालनी, किसी जीवकों दु ख पीसा हो तैसा दुःखजि कार्य कजिजि समुज्जकर-देखकर करना नहि और करानाज्नी नहि

२ जूठ बोलना नहि-क्यों कि जिस्से दूसरे सामनेवाले मनुष्यको अपनके उपर अविश्वास आता है, जिस्से कज्नी सत्यज्नी माराजाता है

३ चोरी करनी नहि-चोरी करनेवाला कज्नी सुखी नहि होता है चोरीसे संपादन किया हुवा धन माल घरमें रहेताही नहि, चोरका कोइ विश्वासज्नी नहि करता चोर मरण आये विगरही मरता है याने फासी वगैरा बुरे हालसे मरता है चोर जटकती फिरती इरामके माल खानेवाली गैयेंकी तरह असतोपी होता है

४ व्यज्नीचारज्नी करना नहि-परस्त्रीगमन और वेश्या गमन ज्ञाइयोंकों, और परपुरुषादि गमन वा-

इयोंकों अवश्य त्याग देनेही लायक है. ऐसा कर्म लोक विरुद्ध होनेसें निंदापात्र होता है, कुलकों कलंक लगता है और नरकादि दुर्गति प्राप्त होती है.

५ अत्यंत तृष्णा रखनी नहि—अति लोभ दुःखकाही मूल है और लोभ अनेक पापकर्म करानेके लिये जीवकों ललचाके दुर्गतिमें मालता है.

६ क्रोध नहि करना—क्रोध अग्निके समान संतापकारी है. प्रथम आपहीकों संतापता है. और जो सामनेवाला मनुष्य समझदार कृमावंत नहि हो तो तिसकोंजी संताप करता है. क्रोधकों टाल देनेका उत्तम उपाय कृमा, समता वा धैर्यता है.

७ अज्ञिमान करना नहि—जो सख्त अहंकार करते है सो मानहीन होजाकर नीचा दरज्जा पाते है, और जो नम्र रहते है सो उंचे दरज्जेका अधिकारी होता है. कहा है कि जहां लघुता तहां प्रभुता विद्यमान रहती है. कुल, जाति, बल, तप, विद्या लाज और ठकुराई आदिका गर्व कज्जि नहि करना.

८ माया कुटिलता करनी नहि—बुल, प्रपंच, दगा, दंज, वक्रता, कपट करके अपनी मगरूरतासें

जलटे रस्तेपर चलनेवाला कच्ची सुख पाताही नहि कहानीची है कि ' दगा किसीका सगा नहि ' कपटि जनकी धर्मक्रिया निष्फल होती है कपटी मनुष्य मुंहका मीठा मगर दिलका जूठा होता है

९ लोभकों त्याग देना—लोभी मनुष्य कृत्या-कृत्य, हिताहित, ज्ञदानज्ञ करनेमें विवेकहीन होकर अग्निके समान ' सर्वज्ञज्ञक बनता है

१० राग द्वेष नहि करना—राग द्वेष दोषसँ आत्मा मलीन होता है राग द्वेष दोनु साथही रहते है तिन्होको जितनेके लिये वीतराग प्रजुनीकी सहायता मदद मागनेकी आवश्यकता है, क्यों कि वह प्रजु सर्वथा राग द्वेष रहित, अनंत शक्तिवत और अनंत गुणवंत है.

११ क्लेश करना नहि—कलह-क्लेश ड खकाही मूल है जहा हरदमेशा क्लेश हुआ करता है वहासे लक्ष्मी पलायन कर (जाग) जाती है इस लिये क्लेशसँ दूर रहेना

१२ जूठा कलंक नहि देना—किसीकों जूठा कलंक लगा देना उसके समान इसरा ज्यादा पाप नहि

है. जूठे कलंकसें जीवकों मरण सादृश दुःख होता है
जैसा दुःख दूसरे जीवकों देनेमें तत्पर होता है तैसा
बलके तिस्सेंजी सोगुना, लाख क्रोर गुना कटुक
दुःख देनेवालेकों पर जवमें झुक्तना पमता है.

१३ चुगली करनी नहि—चुगलखोर मनुष्य दु-
र्जन गिना जाता है. चुगली करनेकी बुरी आदतसें
क्वचित् अहे जले मनुष्यजी संकटमें फंस जाते है.

१४ वैज्जवके वख्त ठक जाना नहि—सुख प्राप्त
होतेही विचार करलेना के सुखका साधन धर्मही है,
तो तिस्केही सेवना करनी योग्य है. यह समुज्जर
धर्म सेवन करना.

१५ दुःखके वख्त दीनता करनी नहि—दुःख
आनेसे विचार लेना के दुःखका निदान पाप-दुष्क-
त्यही है, तो तिस वख्त पापसें बहोतही रुते रहेना
फायदेमंद है.

१६ पिराइ निंदा नहि करनी—निंदाखोर मनु-
ष्य, धर्मी ज्ञाइ वाइयोंकीजी निंदा करता है, तिस्से
तिस निंदकका आत्मा अत्यंत मलीन होता है. निंदा
करनेवाला मृत्युके शरन होकरके नारकी होता है.

महान् पातिकी होनेके लिये निदकको ज्ञानी जननी कर्मचाल कहकर बुलाते है

१७ कहेनी और रहेनी समान रखनी—कहेना कुठ और करना कुठ, यह तो जाहिर उगाइ और लघुताइ गिनीजाती है सज्जन जो बोलता है सोही पलता है और प्रतिज्ञा पल सके तितनाही बोलते है सज्जन पुरुषो सदाचारवत होते है, लोक विरुद्ध वर्त्तन तो सर्वथा तज देते है

१८ जूंग खोटेका पक नहि खींचना—सत्या-सत्यकी परीक्षा करके निश्चय कर सच्चेकाही हम्मेशा पक ग्रहण करना परीक्षा किये विगर कदाग्रदके लिये खोटेका पक--तरफदारी खींचना यह आत्मा-रथीका लक्षण नहि है

१९ शुद्ध देवकीही सेवना करनी—राग द्वेष और मोहादि महा दोषसें सर्वथा वर्जित निर्दोष, निष्कलक, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग, परमात्मा (जिस्का नाम चाहे सो हो, मगर गुणमें सर्वोत्कृष्ट हो सो), तिन्होंकाही अनन्य जावसें शरण ग्रहण करना

१० शुद्ध गुरुकीही सच्चे दिलसें सेवा करनी—
 आप निर्दोष, वीतराग शासनको सेवने वाले और अ-
 न्य आत्मार्थि सज्जनोंकों औसाही निर्दोष मार्ग बताने
 वाले कृपा, मृदुता, सरलता अने निर्लोभतादिक
 श्रेष्ठ गुणोंकों जजनेवाले जिकु, साधु, निर्ग्रन्थ, अ-
 णगार—सुमुक्षु—श्रमणादिक सार्थक नामसें पिठाने
 जाते मुनिगणोंकी शुद्ध गुरु बुद्धिसें सेवन करने
 योग्य है.

११ शुद्ध सर्वज्ञ कथित धर्मकीही समुझकर सेवा
 करनी—दुर्गतिसें वचाकर सद्गति प्राप्त करानेवाला,
 स्याद्वाद अनेकांत मार्ग मध्य शुद्ध श्रद्धा रखकर सेवा
 करनी. दोष मात्रकों दहन करनेमें समर्थ महाव्रत
 सेवन करनेरूप प्रथम मुनीमार्ग उसके अज्ञावसें अ-
 णुव्रत सेवन करनेरूप दुसरा श्रावक मार्ग, और म-
 हाव्रतादि सम्यक् पालनमें असमर्थ होते ज्ञी दृढ
 शासनरागसें शुद्ध मार्ग सेवन करनेवालोका बहोत
 मान्यपूर्वक सत्यतत्व कथन होनेसें तीसरा संविज्ञ
 पक्षीय मार्गकों आत्मार्थी सज्जनोंने दृढ आलंबन
 योगसें जलदी जव समुझसें पार करनेवाला समुज-

कर सेवन करनाही योग्य है

२२ शुद्ध देवगुरु अने धर्मकी सेवा करने लायक होना चाहिये—(तैसी योग्यता प्राप्त करनी चाहिये) अयोग्य—योगता रहित मलीन आत्मा शुद्ध देव, गुरु धर्मकी सेवाका अधिकारी नहि है

२३ आत्माकी मलीनता दूर करनेको मथन करना—अपने मन वचन और शरीरको नियममे रखनेसे आत्मा निर्मल होशकता है

२४ क्षुब्धता त्याग देनी—नीच मलीन बुद्धित्याग कर सुबुद्धि धारण कर अत करण निर्मल करना गजीर दिल रखना, तुच्छता करनी नहि, दुसरेके विद्दतर्फ दुर्लक्ष देकर अपना और दुसरेका हित किस प्रकारसे होय सोही दाने दिलसे विचारना

२५ मात्र न्यायसेही धन उपार्जन करके आजीविका चलावेनी योग्य है—ससार व्यग्रहार वा धर्मव्यवहार अन्वीतराहसे चलानेके लिये न्याय नीतिकोही अगामी रखके योग्य व्यापारद्वारा इव्य उपार्जन करना मुनासिब है न्यायइव्यसे मति निर्मल रहेती है कहाहै कि- 'जैसा आहार वैसाही उद-

गार. ' अन्यायका परिणाम विपरीत आता है.

२६ स्वज्ञाव शीतल रखना—कमक प्रकृति वहीत दफै नुकसान करती है, ठंमी प्रकृतिवाला सुखसें स्वकार्य सिद्ध कर सकता है, और अपने शीतल स्वज्ञाव वलसें समस्त जनसमुदायकों अवश्य प्रिय वल्लज्न लगता है.

२७ लोक विरुद्ध कार्य कर्त्ती करनाही नहि—मांस न्क्षण, मदिरापान, शीकार, जुगार, चोरी, और व्यञ्जिचार यह सब महा निन्द्यकर्म उन्नय लोक याने यह जन्म और परजन्म विरुद्ध है, तिस्से करके उक्त कार्य अवश्य त्यागदेने लायकही है.

२८ क्रूरता नहि करनी—कठोर दिलसें कोइन्नी पापकर्म करना नहि. नहितो उससें उन्नयलोक विगमते है और निंदापात्र होता है.

२९ परज्ञवका रुर रखना—बुरे कार्य करनेसें प्राणीकों परज्ञवके अंदर नरक तीर्थचके अनंत दुःख न्नुक्तने पमते है. अैसा समुज्जकर तैसे नीच अवतार धारण करने न पमे वैसी पेहेलेसेंही खबरदारी रखनी और अपना वर्त्तन सुधारकर चलना.

३० उगवाजी करनी नहि— उग लोगोंको दुसरे मनुष्योकी खुसामत करते हुएजी हरहम्मेशा अपना कपट वूपानेके लिये दूसरोंका जय रखना पमता है उगलोग दुसरेकों उगनेकी इतेजारीका उपयोग करनेमें आपही वहोत उगाते है, विचारे उगलोक समुजते नहि है कि हमलोंग धर्मके अन अधिकारी होनेसे हमारी धर्मकरणी कष्ट काया कलेशरूप निकमी होजाती है

३१ वकिलकी मर्यादा उच्छ्रंघन करनी नहि— वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध और गुणवृद्धकी योग्य दाक्षिण्यता सज्जालनेसे अपना हित जरूर होता है.

३२ उत्तम कुल मर्यादा त्याग देनी नहि— नम्रता रखनी, कोइजी एव लगानी नहि. सुइतासे वा स्थानेपनसें बोलना चालना इत्यादि उत्तम नीति रीति आदरनेकेलिये प्रयत्न कियेही करना, मतलबमें इतनाही कहेना काफी है कि कोइजी प्रशसनीय प्रकारसे कुलकी शोनामें वृद्धि हो वैसेही कार्य करना

३३ दयाई स्वजाव धारण करना—समस्त प्रा-

णियोंको समान गिनकर किसीका जीव दुःख पावे
वैसा करना नहि सब जीवोंको मित्रके सादृश मान
लेनाही लाजिम है.

३४ पक्षापक्षी करनी नहि—सत्यकाही आदर
करना. सत्य वावतमें जेद ज्ञाव धरना नहि और
शत्रु मित्र समान गिन लेकर मध्यस्थ ज्ञावमें स्थि-
त होना.

३५ गुनिजनकों देखकर प्रसन्न होना—यदि
आपको गुन संग्रहनेकी जरूरत हो तो गुनीजनोंको
देखकर प्रसन्न रहो. क्यों कि गुन गुनियोंके पासही
निवास करते है. गुनिलोगोंका अनादर करनेसे गुन
दूर जागजाते है और उनोंका योग्य आदर करनेसे
गुन नजदीक आते है.

३६ मौलमें आजाय जैसा वाक्योच्चार करना
नहि—जब जरूरत हो तब जरूरत जितनाही ज्ञानीके
वचनानुसार बोलनेसे स्व परका हित होता है अन्य-
था उन्मत्त ज्ञापणसे तो अवश्य अपना और दूसरेका
अहितही होता है.

३७ समस्त अपने कुटुंबको धर्मचुस्त बनाना

(धर्मचुस्त करनेमें योग्य यत्न—प्रयत्न उपयोगमें लेना) उपकारी कुटुंबियोंके उपकारका दूबरी रीतिसे बदला देसकते नहि, मगर धर्मके संस्कारी करनेसे उन्हेके उपकारका बदला अछी तराहसे पूर्ण कर सकते है, और धर्मके संस्कारी होनेसे वोह सब प्रकारसे अनुकूलवर्ती होते है

३७ विना विचार किये कोइनी कार्य करना नहि साहस कार्य करनेसे कोइखत जीव जोखममें जुक जाकर महान् शोकातुर होता है, इसलिये तिस्का अतका परिणाम विचार करकेही घटित कार्य करनेमें तत्पर रहेना

३८ विशेष ज्ञान समग्रह करना—सत्यतत्त्व जानेकेलिये जिज्ञासा हो तो अध क्रियाका त्याग करके हरएक व्यवहार-क्रियाका परमार्थ समुज्जर सत्य—निष्कपट क्रिया करनेके लिये पूर्ण आदर करना

४० हमेशा शिष्टाचार सेवन करना—महान् पुरुषोंने सेवन किया हुवा मार्ग सर्व मान्य होनेसे अवश्य हितकारी होता है, इस सबवसे एकपोलक-द्विपत मार्गकों ठोकर सन्मार्ग सेवन करना क्या

कि—‘ महाजनो येन गतः सपन्थाः ’

४१ विनयवृत्ति—नम्रता धारण करनी—सद्गुणी वा सुशील सज्जनोंका उचित विनय करना. सद्गुणी जनोंका कच्चीनी अनादर करना नहि; क्यों कि विनय सोही समस्त गुणोंका वश्यार्थ प्रयोग है. धर्मका मूलनी विनय है. विनयसेही विद्या फलिञ्जत होती है. और विनयसेही अनुक्रम करके सर्व संपत्ति संपादन होती है.

४२ उपकारी जनका उपकार ञ्जल नहिजाना. माता, पिता और मालिकका उपकार अतुल माना जाता है. वह सबसे धर्मगुरुका उपकार बेहद है. तिन्हका उपकारका बदला पूर्ण करनेका सञ्चा उपाय यह है कि तिन्हकों जरुरतके समय धर्ममें मदद देनी औरसा समुञ्जकर वैसी उत्तम तक—मोका सुज्ञजनकों खो देना नहि क्यों कि, गया बरत फेर हाथ आता नहि.

४३ यथाशक्ति जरुर पर दुःखञ्जन करना—दीन, दुःखी, अनाथ जनकों यथा उचित सहाय देकर तिन्होंकों आश्वासन देना. और कुठ न बन सके तो

योग्य वचनसेजी तिन्होंकों संतोष देना. तिन्होंका जीवात्मा कोइ प्रकारसें डु खी हो तैसा कुठ करना या शब्दोच्चारणी करना नहि और तिन्होंकों टिगम-गाकर देना, उस करते जलड़ी अपनी शक्ति मुजब दे देना

४४ कार्यदक्ष होना—अन्यास बलसें कोइजी कार्यमे फिकरमद नहि होके तिस्को पार पढ़ोंबानेम पूर्ण हिम्मतवंत होना आरंभ किये हुवे कार्यमें कितनेजी विघ्न आजाये तोजी दाय्र घरे हुवे कार्यमे निररतापूर्वक अरुग रहकर कार्य सिद्ध करना.

४५ मिथ्यात्व सेवन करना नहि—राग द्वेषसें कलंकित हुवे कुदेवोंका तत्वसे अइ मिथ्या कदाग्र-ही कुगुरुका और दिसादि दूषणोंसें सहित कुधर्मका सर्वथा त्याग करना अज्ञानमय होळी प्रमुख मिथ्या पर्वोंकाजी अवश्य परिहार करना. मिथ्या देव देवी-की मानत नहि करनी शासन जक्त सुरवरोंकी सञ्चे बिलसें आस्था रखनी; क्यों कि, आपत्तिके वखत जक्तजनोंकों शासनदेवही सहायजूत होते है.

४६ शंका कखा धारण करनी नहि—सर्वइ वी-

तराग परमात्माके प्रमाणरूप वचनमें कदापि शंका करनी नहि क्योंकि, तिन्हकों सर्वथा दोष रहित होनेसें जुंठ बोलनेका कुठ प्रयोजन नहि है, इस्सें निःशंकपणे श्री जैनशासनकी शुद्ध दिलसें सेवा करनी. प्राणांत होनेसेंजी पाखंती लोगोंने फेलाइ हुई जाळमें फंसानां नहि.

४७ धर्म संबंधी फलका संदेह करना नहि—जो साक्षात धर्म कल्पवृक्षका सेवन करके तीर्थंकर गणधर प्रमुख असंख्य मनुष्योंने साक्षात सुखका अनुभव कीया है सो पवित्र धर्मके अमोघ फलका संदेह निर्वल मनवाले मनुष्य सिवाय दुसरा कौन करेगा ? अपितु अन्य कोइजी नहि करेगा.

४८ मिथ्यात्वका परिचय त्यागदेना—‘ सोवते असर ’ यह दृष्टांतसें स्वगुणकी हानी और कदाग्रही विपरीत दृष्टी जनके ज्यादा संगसें आत्माका सहज शत्रुरूप उर्गुणकी वृद्धि होती है.

४९ मिथ्यात्वकी स्तुतिजी नहि करनी—इस्की स्तुति करनेसेंजी मिथ्यात्वकीही वृद्धि होती है.

५० तत्वग्राही होना—मध्यस्थ वृत्तिसें सत्य ग-

बेपक होकर सुवर्णकी तराह परीक्षा पूर्वक शुद्ध तत्व अंगीकार करना

५१ जोहेरीकी मुवाफिक सुपरीक्षक होना—शुद्ध तत्व स्वीकारते पेहेले जोहेरीकी तराह अपनी चातुर्यताका जहा तक बने वहातक पूर्ण उपयोग करना

५७ तत्वपर पूर्ण श्रद्धा रखनी—श्री सर्वज्ञ प्रभुके फरमाए हुए तत्व वचनोपर पूर्ण प्रतीति रखनी, किंचित्नी चलित नहि होना

५३ नीच आचारवालेकी सोवत सर्वथा त्याग देनी—नीच सगतिसे हीनपदही प्राप्त होता है प्रत्यक्ष देखोकि गगानदीका पवित्र जलजी द्वार समुद्रमे मिल जानेसे द्वाररूप हो जाता है अैसा समुद्रर सत्सग सेवन करनाही मुनासिब है

५४ धर्म (शास्त्र) श्रवण करनेमें तीव्र रुचि करनी—जैसे कोइ सुखी और चालाक युवान वदोत उत्साहसे दैवी गायन नादको अमृत समान जानकर श्रवण करे तैसे बलके तिससेजी अधिक उत्कृष्ट शास्त्र श्रवण करना योग्य है शास्त्रवाणी श्रवण क-

रनेमें बनी सकर-झकसैनी ज्यादा मिष्टता पैदा होती है.

५५ धर्मसाधन करनेपर बहोत रुचि रखनी-जैसें कोइ ब्राह्मन जंगल उद्ध्वन करके थकित बन-कर बेहोश होगया हो और नस्कों बहोतही झूख लगी हो, उस वखत कोइ सख्त नस्से घेवरका जो-जन देदे तो बहोतही रुचिदायक हो, तैसें मोक्षार्थीको धर्मसाधन करना रुचिकर होना चाहिये.

५६ देवगुरुका वैयावञ्च करनेमें कचाश नहि रखनी चाहिये-जैसें विद्यासाधक प्रमाद रहित विद्या साधनमें तत्पर रहेते है, तैसें शुद्ध देव गुरुका आराधन करनेमें कुशलता रखनी आत्मार्थीओंको योग्य है.

५७ विनयका स्वरूप समुज्जर अरिहंतादिकका निम्न लिखे मुजब आदर रखना. १ ऋक्ति (बाह्य उपचार), २ हृदयप्रेम-बहु मान, ३ सद्गुणोंकी स्तुति, ४ अवगुन--दोषदृष्टिका त्याग करना और ५ बनते तक आशातनाओंसें ढर रहेना.

- ५८ शुद्ध समकित-पालना-(मन, वचन और

कायासें) श्री जिन और जैनमार्ग बिगर समस्त अ-
सार है, ऐसा निश्चय करनेसें मनसें, श्री जिनज-
क्तिसे जो बन शके सो करनेवाला हुनियामे दुसरा
कौन समर्थ है, ऐसा कहेनेसें वचनसें, और अरुग-
पनसे श्री जिनके सिवा अन्य कुदेवकों कविनी प्र-
णाम नहि करनेसे कायासें ऐसे त्रिकरण शुद्धिसे स-
म्यक्त्व पालना

५९ जैनशासनकी प्रजावना करनेमें तत्पर
रहेना—पवित्र जैन सिद्धातका पूर्ण अज्यास करनेसें
ज्ञव्य जनोको धर्मोपदेश देनेसे, दुर्वादीका गर्व मर्दने
सें, निमित्त ज्ञानसें, तपोबलसें, विद्यामत्रसें, अंजन
योगसें और काव्य बलसे राजा वगेराहकों प्रतिबो-
धनेम, जैनशासनकी विजयपताका फरफरानेमें घ-
टित वीर्य स्फुरायमान करना

६० जिस प्रकारसें समकित शुद्ध निर्मल हो
तिस प्रकारका त्वरासे उपयोग करना—शुद्ध देव गु-
रुकों यथाविधि वंदन करके, यथाशक्ति व्रत पञ्चस्काण
करना तथा उत्तम तीर्थ सेवा, देवगुरुकी जक्ति प्र-
मुख सुकृत ऐसी तराहसें करना कि जिस्सें अन्य

दर्शनी जनोन्नी वह वह सुकृत करणीकी अवश्य अनुमोदना करके बोध बीज बोकर ज्ञवांतरमें सुधर्म फल प्राप्त करनेको समर्थ होके यावत् मोक्षाधिकारी होवे.

६१ अपराधी परन्नी क्षमा करनी—अपराधिकांकी अहित नहि करना, और वनशके वहांतक अपराधीकोंकी सुधारनेकी-केलवणी देनेकी इत्ता रखनी.

६२ मोक्ष सुखकीही अन्निजाया रखनी—जन्म मरणादि समस्त सांसारिक दुःखाधि रहित अक्षय सुख संपादन करनेके लिये अहर्निश यत्न करना. देव मनुष्यादिकके सुखोंकोंकी दुःखरूपही जानना.

६३ संसारके दुखलें त्रासवंत होना—यह संसारकों नरक वा काराग्रह समान जानकर तिनलें मुक्त होनेका यत्न किये करना.

६४ पीडित जनोकों बने वहांतक सहायता देनी—ज्यलें दुःखी होनेवाले मनुष्योंकों, तथा धर्म कार्यमें सीदाले हुवे सज्जनोंकों यथायोग्य मदद देकर तिन्होंकों घटित तोष देना. तिन्हकी उपेक्षा करके वेदरकार न रहेना. एकन्नी जीवकों सत्य सर्वज्ञ धर्म

प्राप्त करानेवाला महान् लाज उपार्जन करता है.

६५ वीतरागके वचन प्रमाण करें—सर्वज्ञ वीतराग परमात्माने तीनो कालके जो जो ज्ञाव कहे है वह वह ज्ञाव सर्व सत्य है, श्रैली दृढ आस्तावाला मनुष्य उत्तम लक्षणोसे लक्षित समकित रत्नको धारण कर सुखी होता है

६६ ग्रहण क्रिये हुवे व्रत साहसीकतासे पालन करे—सत्य सत्ववत शूरवीरोको निये हुवे व्रत श्रवणतासे पालन करनेमे तत्पर रहेना घटित है प्राणात समयमेंजी अंगीकार किये हुए व्रतोंको खरन करना मुनासिब नहि है

६७ अपचाढके वखत जिस प्रकारसे धर्मका संरक्षण हो तिस प्रकारसे ध्यान पूर्वक वर्तना, राजा, चोर दुर्जिहादिकके सबल कारणके वखत जिस प्रबंधसे चित्त समाधिबंत रह शके तिस प्रवध युक्त दीर्घदृष्टिसे स्वव्रत सन्मुख दृष्टि रखकर उचित प्रवृत्ति करनी

६८ हरेककार्य प्रसगमें धर्ममर्यादा याद रखकर चलना—जिस्तें धर्मको बाध न लगे, धर्म लघुता न

पावे, और स्वपर हित साधनमें खलेल न पहाँचे
 औसी उचित प्रवृत्ति करनी चाहियें.

६ए आत्मा हर एक शरीरमें विद्यमान है-
 जैसे तिलमें तैल, फूलोंमें खुसबु, दुग्धमें घृत, तैसें
 प्रत्येक शरीरमें आत्मा रहा है. सर्वथा शरीर रहित
 आत्मा सिद्धात्मा कहा जाता है.

७० आत्मा नित्य है—नारकी, तिर्यच, मनुष्य
 और देवतारूप चारों गतिमें आत्मत्व सामान्य है.

७१ आत्माकर्ता है—अशुद्ध नयसें आत्मा कर्मका
 कर्ता है और शुद्ध नयसें स्वगुणका कर्ता है.

७२ आत्मानोक्ता है अशुद्ध नयसें आत्मा क-
 र्मका जोक्ता है और शुद्ध नयसें तो स्वगुणकाही
 जोक्ता है.

७३ मोक्ष है--समस्त शुभाशुभ कर्मका सर्वथा
 क्षय होनेसें आत्मा परमात्मा—सिद्धात्मा होकर जो
 लोकाग्र अजरामर, अचल, निरुपाधिक स्थानकों
 संप्राप्त होता है सो मोक्ष कहा जाता है.

७४ मोक्षका उपायनी है—सम्यग् ज्ञान (त-
 त्वज्ञान), सम्यक् दर्शन (तत्व दर्शन), और स-

म्यग् चारित्र (तत्व रमण) यह मोक्ष प्राप्तिके अ-
वंध्य अमोघ उपाय है.

३५ सबके साथ मैत्रीभाव रखना—सर्व जीवों
को मित्रही जानना, किसीके साथ शत्रुता धारण क-
रना नहि सबमे जीवत्व समान है, सर्व जीव जी-
नेकी इच्छा रखते है, सुख दु ख समय मित्रवत् स-
मजागी होना द्वेष इर्ष्या या स्वार्थबुद्धिसे किसीका
जी कार्य विगारना नहि.

३६ पापी, निर्दय, कठोर परिणामवाले प्राणी
परजी द्वेषभाव धरना नहि—तैसे दुर्नव्य वा अन्नव्य
जीवके साथ प्रीति वा द्वेष रखना नहि मध्यस्थ
रहकर चितवन करना कि वो त्रिचारे निविरु कर्मके
वश होकर तैसा वर्त्तन करते है

३७ बुद्धित होकर तत्वका विचार करना—में
अैसी स्थितिवत क्या हुआ ? मेरेको कैसा सुख अजिष्ट
है ? वो कैसे मिल शके ? मेरेको सुखमें अंतराय
कौन करता है ? वह वह अंतरायको मे किस प्रकार-
से दूर कर शकुं ? वगैरा वगैरा

३८ मानवदेह प्राप्त करके बन शके जैसे सुव्रत

धारण करे. बोध प्राप्त कियेका यही सार है कि असार और अनित्य देहमेंसे सार व्रत धारण कर सत्य और सनातन धर्म साधना.

७९ लक्ष्मी प्राप्त करके सुपात्र दान दे, सङ्ग-योग करे—लक्ष्मीका चंचल स्वभाव जानकर विवेकसे पात्र-सुपात्र दान देना, सो ऐसा समझकर देना कि 'हाथसें करेगे सोही साथ आयगा' 'जैसा देवेगे तैसाही पावेगे.'

८० सत्य और प्रिय वचन मुंहकी शोभा है—जिस करके दूसरेका हित हो वैसा मीठा—मधुर ज्ञापण करना. कठोर ज्ञापण कदापि नहि करना सो यह समझकर नहि करना कि—'वचने का दरिद्रता'

८१ जितना बन शके तितना जीवहिंसासें डर रहेना—डुःख, दुर्भाग्य, बीमारी वगैरां प्रकट हिंसाके ही फल समूह सुशजन प्रमादसें पिराये प्राण अपहरणरूप हिंसासें दूर रहनेके लिये बने वहांतक प्रयत्न करे.

८२ जितना बने तितना असत्यसें दूर रहेना. मूकपन, बोवकापन, मुखपाकादिक रोग वेदना वगैरां

प्रकट असत्य ज्ञापणकेही फल समुज्जर सुज्ञजन
असत्यका त्याग करदेवे

७३ जितना वन शके तितना अदत्त-चोरीसँ
दूर रहेना ' दगा फितीका सगा नहि ' थैसा समू-
ज्जर तथा राजदरु जय, निर्धनता, कृपणतादिक प्र-
कट चोरीके फळ जानकर समजदार लोगोको वने
वहातक अनीतिसे दूर रहेनाही डुरस्त है

७४ मैश्रुन क्रीमा-पशुवृत्तिका वने वहातक
त्याग कर विरक्त दशा धारण कर लेनी धातुकुय,
कृय रोग, चादी वगैरा अनेक दु खके जोग होनेरुप
प्रकट कामक्रीमाके फल समुज्जर तथा ज्ञानीके व-
चन मुजब बहुतसे जीवोंका नाश होनेका कारण
जानकर सत्य सुखार्थीजन वनशके तितना मैश्रुन
परित्याग कर सतोप धार लेवे.

७५ जितना वनशके तितना परिग्रहका प्रमाण
कम करदेना-मोहममत्वकी वढानेद्वारा वनधान्या-
दिक नव प्रकारके परिग्रह वनते तक घटा देना सू-
जुम, ब्रह्मदत्त प्रमुखकी परिग्रहकी वढोत ममतासे
खुर्दशा हुइ विचारकर श्याने लोग अर्थकों अनर्थकारी

समूहकर घटित संतोष धारणकर लेवे.

७६ निर्ग्रन्थ मुनि महाव्रतके अधिकारी है—हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन, परिग्रह, यह पांचोंका सर्वथा मन वचन और कायासें करना कराना और अनुमोदन आश्री त्याग करके वो महाव्रतोंको शूरी होकर पालन करनेवाले निर्ग्रन्थ अणुगारके नामसें पहेचाने जाते है.

७७ अणुव्रत धारक श्रावक कहेजाते है—स्थूल हिंसादिकका यथाशक्ति संकल्प पूर्वक त्याग करनेवाला श्रावक कहाजाता है.

७८ रात्रिज्ञोजन महान् पापका कारण है—पवित्र जैनदर्शनमें साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका मात्रको रात्रिज्ञोजन सर्वथा निषेध है. अन्य दर्शनमेंत्री रात्रिमें अन्न लेना मांस बराबर और पानी पीना रुधिर बराबर कहा है. असा समूहकर सुज्ञ मनुष्योंको रात्रिज्ञोजन ठोर देनाही लाजीम है. रात्रिज्ञोजन करनेवालेको सांप, यनलौ, घूँघूँ, ठपकली प्रमुख नीच अवतार लेने परते है. और ज्ञोजनमें क्वचित् विषजंतु आजानेसें विविध जातिके व्याधि

विकार पैदा होतेहै कच्ची मरजावे तो दुर्गतिमें जाना परता है

एए दूसरेजी अन्नकोंका त्याग करना—दो रात्रिके बादका दही, तीन रात्रि व्यतीत हुवे बादकी गाठ, कच्चा गोरस दूध, दही, और गाठके साथ मुंग, उरुद, अरहर, चिने, इत्यादि छिदल खाना कच्चा निमक, तिल, खसखस, तुष्ट फल, अनजाने फल, दिनके उदय सिवा जोजन करना, सध्याकी सधिके वखत जोजन करना, अस्के फलका और त्रिगर धूप बताए हुवे आचार, गतदिनका पकाया हुवा जोजन, विषग्रहण, ओते, वरफ वगैरा जो जो प्रसिद्ध अन्नक (नहि खाने लायक) है वह वह सर्व पदार्थ सर्वथा त्याग देने चाहिये वेगन, पीलु, वरुकेफल, सहेत, मस्कल आदिजी सब अन्नक समूजकर वर्जित करना सो बहोतही फायदेमद है.

ए० अनंतकायका ज्ञरुणजी त्याग देना—अडक, मूली, गाजर, पिरु, पिरुलु, सूरन, वगैरा जमिकंद, तथा बहोतही कोमल फल वा पत्र पत्ति, श्रेग, नीमिलोय, मोथ प्रमुख, किंवा नये उगने हुवे अंकुर

कुंपल वगैरामें अनंत जीवोंकी उत्पत्ति जानकर तिन्होंकी हिंसासें दूरकर तिन्होंका त्याग करना.

ए१ तीन गुणव्रत धारण करना—उपर कहे हुवे अणुव्रतकी पुष्टिके लीये दिग् विरमणव्रत १, जोगो पजोग विरमणव्रत २, अनर्थदंरु विरमणव्रत रूप गुणव्रत धारण करना. पहीले गुणव्रतमें मर्यादा की हूर जूमिके बहार जाना नहि. दूसरेमें महा पाप वाले १५ कर्मादानका व्यापार बंध कर देना, तथा चौदह नियम धारण करना. और तीसरेमें दूसरेकों पापोपदेश नहि देना. पापकारी उपकरण कोइजी मंगे तो नहि देना नाटक प्रेक्षणा नही करना.

ए२ चार शिक्षाव्रत सेवन करना—सामायिक (संकष्टप पूर्वक असुक वरुत समता ज्ञाव सेवन करण रूप) १, देशावगासीक (दीग्वीरमण व्रतका संक्षेप करण रूप) २, पौषध (आहार, शरीरसत्कार मैथुनक्रीडा तथा अन्य पाप व्यापारका सर्वथा वा अंशसें त्यागरूप) ३, अतिथि संविज्ञाग (साधु, साध्वीकों दान देव जोजन करणरूप) ४, यह चारों शिक्षाव्रत सुश्राविक श्राविकाओने सुल गुणोंकी पुष्टि

खातर अज्ञ्यासरुपसैं अवश्य सेवन करने लायक है.

ए३ ग्रहण कियेहुवे व्रतोंको यथार्थ पालन करे लक्ष्मी, यौवन और जीवितको अस्थिर जानकर तिन्होंको उत्तम व्रतसे सफल करनेकेलिये सज्जन जन दृढ निश्चय करे, और प्राणात समयजी ग्रहण करे हुवे व्रत खन्ति न करे

ए४ पहिले व्रतका स्वरुप जानकर अगिकार करे— व्रतका स्वरुप समुझकर तिस्से यथाविधि पालन करनेसे यथार्थ फल प्राप्त कर सके

ए५ व्रतकी तुलना करलेनी—अंगीकार करने योग्य व्रतका प्रथम अच्ची तराहसे अज्ञ्यास कर पिठे तिसका पञ्चस्काण करना

ए६ अज्ञ्यासकों कुछ असाध्य नहि है—अभ्यासके बलसैं प्राणी पूर्णताकों प्राप्त कर शकता है, इस लिये अज्ञ्यास कियेही करना

ए७ सावधानीसैं मोक्ष क्रिया साधनी—शास्त्र कथन मुजब मोक्षगमन योग्य सत्क्रिया साधते हुवे ' तक्ष पात्रधर ' (सपूर्ण तैलका पात्र लेकर चलनेवाले)

तथा ' राधावेध साधनेवाले ' की तरांह सावध रहेना किंचित्ज्ञी गफलत करनी नहि. विद्या मंत्रसाधककी तरांह अप्रमत्त होकर रहेना.

एण सुख दुःखमें सिंह वृत्ति जननी—धारण करनी—सुख दुःखके वखतमें हर्ष शोककी वेदरकारी रस्ककर कैसें कारणोंसें वह सुख दुःख पैदा हुवे है, सो तपास कर अशुभ कर्मसें रुकर चलना और बने वहांतक शुभ कर्म-सुकृत समाचरना.

एण श्वानवृत्ति सेवन करनी नहि—जैसे कूतरे पथपर मारने वालेकों काटना ठोरकर पत्थरकों काटने दोरता है, तैसे अज्ञानी अविवेकी जननी सुख दुःख समयमें सीधा विचार करना ठोरकर उलटा विचार कर हर्ष खेद धारणकर कुत्तेकी तरांह दुःख-पात्र होता है. मगर जो समजदार है वो तो उन्नय समयमेंनी समानज्ञाव धारण करते है.

प्रकरण तीसरा.

सद्गुरुसँ सुविनीत शिष्यके प्रश्न और
तिसका अत्यंत संक्षेप सारचूत
समाधान.

१ प्र हे प्रजु ! प्रथम परमार्थ दृष्टि प्राणिकों आद-
रन योग्य क्या है ?

उ सद्गुरुका वचन (यथार्थ तत्त्वदर्शी गुरुके
वचनपर पूर्ण विश्वास रखना)

२ प्र हे प्रजु ! परिहरने-त्याग करने योग्य क्या है

उ अकार्य दिनादि अगारह पापस्थानक अवश्य
त्याग देनेही योग्य है

३ प्र हे प्रजु ! गुरु कैसे होने चाहिये ?

उ तत्त्वज्ञानी और तत्वोपदेशक स्वपरका हित
करनेमें तत्पर हो सोही गुरु है.

४ प्र हे प्रजु ! विद्वानकों ताकीदसँ क्या करना
मुनासिब है ?

उ चार गतिमें परिभ्रमण होता है सो निवारण
करना योग्य है

५ प्र. हे प्रभु ! मोक्ष महावृक्षका अवंध्य (सच्चा) बीज कोनसा ?

उ. सम्यग्ज्ञान (तत्त्वज्ञान) के साथ सच्ची दंष्ट्र रहित क्रियाका सेवन करना सो मोक्ष महावृक्षका बीज है.

६ प्र. हे प्रभु ! परजन्म गमन करते वरुत जीवकों संबल (रस्तेमे खानेका खोराक) क्या है ?

उ. दान, शील, तप और ज्ञावनारुप केवली ज्ञाषित धर्म.

७ प्र. हे प्रभु ! इस दुनियामें सच्चा पवित्र कौन हे ?

उ. जिसका मन पवित्र निर्दोष निर्विकारी वर्तता है सो पवित्र है.

८ प्र. हे प्रभु ! दुनियामें सच्चा पंथित कौन है ?

उ. जिसकों सद्विवेक जाग्रत हुआ है. जो सत्यकाही पक्ष करता है सोही सच्चा पंथित है.

९ प्र. हे प्रभु ! दुनियामें सच्चा ऊहर क्या है ?

उ. सदगुरुकी अवज्ञा आशातना, हेलना, निंदा, हिंसा करनी सोही खरा ऊहर है.

१० प्र. हे प्रभु ! मनुष्य जन्म मिलनेका वास्तविक

सार्थक क्या है ?

उ स्व परहित साध लेना, अपना और पिराया कल्याण करनेमें तत्पर रहेना सो मानव ज्ञव प्राप्ति-का सार्थक है

११ प्र हे प्रजु ! मदिरा (दारु) की तराहसे जीवको मूर्खित करनेवाला कौन है ?

उ स्नेह-राग (पर वस्तु-जन्म पदार्थमे अत्यंत आशक्ति) है

१२ प्र हे प्रजु ! चोरोंकी तराह अपना सर्वस्व हर-लेनेवाला कौन है ?

उ शब्द, रूप, रस, गंध, और स्पर्श यह पाचों इंद्रियके विषय सोही अपना सब हरलेनेहार है

१३ प्र हे प्रजु ! ससाररूप विषवल्लीका मूल (नि-दान) कौनसा है ?

उ तृष्णा-विषयतृष्णा-परिग्रह-तृष्णा-यशमान-तृष्णा वगैरा ससार विषवल्लीका मूल है

१४ प्र दुनियामें सच्चा शत्रु कौन ?

उ प्रजुके पवित्र वचनसे विरुद्ध वर्त्तनरूप प्रमाद-कटा दुश्मन है

१५ प्र. हे प्रज्जु ! दुनियांमें काहेसैं प्राणी धर धर कांपते है ?

उ. मरण ज्ञयसैं कांपते है.

१६ प्र. हे प्रज्जु ! दुनियांमें खास अंधा कौन है ?

उ. रागी-गुण दोषकों नहि देखनेवाला. अंधेकी तरांह अहित आचरनेदारे खास अंध है.

१७ प्र. हे प्रज्जु ! दुनियांमें सच्चा शुरवीर कौन ?

उ. जिस्कों स्त्रीके लोचनवाण पीना नहि कर सकते है सो वीर है.

१८ प्र. हे प्रज्जु ! दुनियांमें कर्णपुटसैं पीने लायक कौनसा अमृत है ?

उ. सत्य, सर्वज्ञ उपदेशामृत (शांत रसदायी संतोंका उपदेशामृत) कान रूप पात्रके मारफत पीने योग्य है.

१९ प्र. हे प्रज्जु ! दुनियांमें प्रज्जुताका मुल निदान क्या है ?

उ. अदीनवृत्ति-किसीकी जूंठी खुसामद नहि करनी सो निर्लौजता प्रज्जुताका मूल कारण है.

२० प्र. हे प्रज्जु ! दुनियांमें गहनमें गहन (अत्यंत

संसा) क्या है ?

उ स्त्रीओके चरित्र (वर्तन-आचरण) किसीकी जी कलनामें नहि आते है इस्से अत्यंत गहन है.

२१ प्र हे प्रज्जु ! दुनियामें सच्चा चतुर श्याना हि-
म्मते बहादुर कौन है ?

उ जो स्त्रीके चरित्रोंसें नहि ठगाया हो, तिसके फदेमे न फसाया हो सोही चतुर है

२२ प्र हे प्रज्जु ! दुनियामें सच्चा दारिद्र्य दुःख कौनसा है ?

उ असतोपही सच्चा दारिद्र्य दुःख है

२३ प्र हे प्रज्जु ! दुनियामे सच्ची लघुताइ कौनसी है?

उ दूसरेके पास जाकर याचना करनी सो दी-
नता—स्पृहा—पराशा रखनी सोही लघुताइ है

२४ प्र हे प्रज्जु ! दुनियामे सच्चा जीवित कौनसा ?

उ दोष कलंक रहित जिसका जीवन गुजरा उ-
स्काही जीवित सफल है

२५ प्र हे प्रज्जु ! दुनियामे सच्ची जरुता कौनसी ?

उ शरीर बल, तथा बुद्धिबल होने परजी अभ्या-
स नहि करना सोही जरुता है

२६ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें वास्तविक जाग्रत कि-
स्को कहा जावे ?

उ. विवेकी, जिन्होंने तत्त्वज्ञान, तत्त्वदर्शन और त-
त्वरमण प्रकट हुवे है सो सदैव जाग्रतमान है.

२७ प्र. हे प्रभु ! दुनियामें सच्ची निद्रा कौनसी ?

उ. जीकी अज्ञानता—अविवेकताही सच्ची निद्रा है

२८ प्र. हे प्रभु ! कमलके पत्रपर ठहरेहुवे जलबिंदुके
सादृश चंचल—चपल क्या क्या है ?

उ. यौवन, लक्ष्मी, और आयुष्य यह सर्व चंचल—
अस्थिर नाशवंत है.

२९ प्र. हे प्रभु ! चंद्रके किरण जैसे शीतल स्वप्नावी
दुनियामें कौन है ?

उ. केवल सज्जनही चंद्रके समान शीतल वच-
नामृतकों श्रावित करनेहार है.

३० प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें नरक जैसा दुःख किस-
की अंदर है ?

उ. परवशता—पराधीनता—परोपजीवितामें नर-
कवत् दुःख है.

३१ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें सच्चा सुख किस वस्तुमें है ?

उ नि संगता, निस्पृहता निर्लेपता, सर्वथा वैरा-
ग्य उदासीनतामे परम सुख है

३१ प्र हे प्रभु ! दुनियामे सच्चा सत्य क्या है ?

उ जिस्से जीवका हित हो-प्रहित न हो, वा
अहित होता अटकजाय औसाही वचन तत्वसे सत्य है
३३ प्र हे प्रभु ! दुनियामे जीवको प्रियमे प्रिय चीज
कौनसी है ?

उ अपना प्राण-जीवित सबसे प्रिय है
३४ प्र हे प्रभु ! दुनियामे सबसे अल दान
कौनसा है ?

उ इच्छा रहित देना-परमार्थ जावसें समर्पण
करना सो

३५ प्र हे प्रभु ! दुनियामे सच्चा मित्र कौन है ?

उ जो पापसें-पापकर्मसें निवर्त्तन कराके ठि-
कानेपर ब्यावे, और नि स्वार्थी परोपकारशील हो
सो सच्चा मित्र है

३६ प्र हे प्रभु ! दुनियामे सच्चा रूपण क्या ?

उ. शील-सद्गुण-सदाचार सोही मनुष्यका
सच्चा रूपण है. याके शिवा दूसरे सुवर्ण रूपण दू-

षण रूप है.

३७ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें अबल दरज्जेका मुखमं-
रुन क्या है ?

उ. सत्य-अवितथ-अविरुद्ध वचन बोलना सोही
मुखका सच्चा आञ्जूपण है.

३८ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें वास्तविक अनर्थकारी क्या ?

उ. अनिश्चित-अस्थिर और धना विगणका मन
सोही अनर्थकारी है.

३९ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें सबसें आला सुख देनेवा
ली वस्तु क्या है ?

उ. मैत्री, समस्त जगत् जंतुओंके साथ मैत्री-
जाव रखना.

४० प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें सब आपदाओंको दलन
करनेके लीये कौन समर्थ है ?

उ. सर्व विरति-पंच महाव्रत धारण करना और
रात्रि ज्ञोजनका सर्वथा त्याग करना.

४१ प्र. हे प्रभु ! इस दुनियांमें सच्चा अंध कौन है ?

उ. जो जानबुझकर अकार्य सेवन करता है सो,
वा पाप प्रिय पामरजन अत्यंत अंध है.

४२ प्र हे प्रभु ! दुनियामे खरा बधिर कौन ?

उ जो औसर प्राप्त होजानेपरन्ती हित वचनकां सुनता-आदरता नहि है सो

४३ प्र हे प्रभु ! दुनियामे अबल दरज्जेका मूक कौन ?

उ जो औसर हाजर हुवेन्ती प्रिय वचन बोल शकता नहि

४४ प्र हे प्रभु ! दुनियामें वास्तविक मरणतुल्य क्या ?

उ मूर्खपन—मूर्खको कदम दर कदमपें क्लेश—खेद होता है, इसीलिये यह मरण सादृश बना दु ख है

४५ प्र हे प्रभु ! दुनियामे सबसे अमूल्य क्या है ?

उ जो यथा औसर—सच्ची तकपें देनेमें आवे सो महान् लाज देता है, इसीलिये औसरपर जरूरतवाली चीज देना जैसे भूखेको अन्न, प्यासेको पानी, नगेकों कपडा

४६ प्र. हे प्रभु ! दुनियामे मरतेतक क्या खटकता—पीरता है ?

उ जो बुपी रीतिसे पाप सेवन किया हो सो मरन तक खटकता है

४७ प्र. हे प्रभु ! दुनियामें कौनसी कौनसी बाबतमें

अवश्य यत्न करना चाहिये ?

उ. विद्याभ्यास, सद्बोध, और दानकी अंदर विवेकपूर्वक यत्न करना चाहिये.

४८ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें कौनसी कौनसी बाबते अवगणना करने योग्य है.

उ. खल जन, पर दारा, और परधन अवश्य वर्जित करने योग्य है.

४९ प्र. हे प्रभु ! दुनियांमें कौनसी बाबत रात दिन सदा चिंतवन करने योग्य है ?

उ. संसारकी असारता—अनित्यता निरंतर चिंतवन योग्य है परंतु महा मोहकों उत्पन्न करनेवाली प्रमदा स्त्री चिंतवन करने योग्य नहि है. तिस्के रंग रूपसें रंजित होना नहि, लेकिन तिस्कों विकार कारिणी जानकर त्यागदेनी योग्य है.

५० प्र. हे प्रभु ! कौनसी कौनसी बाबते विशेष प्रिय वद्वज्ज गिनकर आदरनी ?

उ. करुणा, दुःखी जीवोंपर अनुकंपा, दाक्षिण्यता और सब जीवोंकेपर समानज्ञाव—मैत्रीज्ञाव याने “ आत्मवत् सर्व ज्ञूतेषु ” अैसी बुद्धि रखनी.

५१ प्र हे प्रजु ! प्राणात कष्ट आंजानेपरञ्जी किस
किसके वश्य नहि होना

उ मूर्ख (अज्ञानी-अविवेकी), दीनता, गर्व
और कृतघ्नके वश नहि होना

५२ प्र हे प्रभु ! जगत्में पूजने योग्य कौन है ?

उ सदाचारी, शुद्ध व्रतधारी-निर्मल चरित्रवत
जन पूजने योग्य है

५३ प्र हे प्रभु ! जगत्में कमनसीव कौन है ?

उ जगत्प्रती-जगत्परिणामी-खरित शीलवाला
वेशक कम नसीवदार है

५४ प्र हे प्रभु ! जगत्में कौन वश कर शकता है ?
जन प्रिय कौन होशकता है ?

उ हित मित (सत्य) ज्ञापी और सदनशील-
ह्रमावत हो सो जगत्मान्य और प्रीतिपात्र हो
सकता है.

५५ प्र हे प्रजु ! देवञ्जी कैसे मनुष्यको नम्रतासें न-
मन करते है ?

उ दया प्राधान्य-जिन्के हृदयमें उत्तम दयाधर्म
स्थित हो तिनको देवञ्जी नमन करते है.

६६ प्र. हे प्रज्जु ! कौनसी वावतसें सुबुद्धि जीवोंको उद्वेग धारण करना योग्य है ?

उ. यह चार गतिरूप ज्ञवाटवीसेंही उद्वेग निर्वेद धारण करना योग्य है.

६७ प्र. हे प्रज्जु ! प्राणी सहजहीमें किस्के ताबे हो जाते है ?

उ. सत्य और प्रियज्ञाषी तथा विनीत-अत्यंत नम्र मनुष्य के ताबे हो जाते है.

६८ प्र. हे प्रज्जु ! इष्ट (प्रत्यक्ष) और अइष्ट (परोक्ष) अर्थके लाज निमित्त मनुष्यको कौनसे मार्गमें स्थित होना ?

उ. न्याय, नीति (प्रमाणिकता) केही मार्गमें स्थिरता करनी, अन्याय, अनीतिका मार्ग कदापि हाथ धरणा नहीं.

६९ प्र. हे प्रज्जु ! बिजलीकी तरांइ चपल वस्तुए कौनसी कौनसी है ?

उ. दुर्जन जनकी प्रीति और स्त्री जाति चपलावत् चपल है.

७० प्र. हे प्रज्जु ! यह कलिकालमें जी मेरु सादृश

धीर कौन है ?

उ सज्जन साधु सत पुरुषो मदराचलवत् धैर्य-
वत है

६१ प्र. हे प्रज्जु ! धनवत है तदपि शोच करने योग्य
कौन है ?

उ. कृपणता, जैसे मंमण शोठ कंजूस आ वैसा
धनवंत होतो शोच करनेही योग्य है

६२ प्र हे प्रज्जु ! अल्पधन—गरीब हो तथापि प्रशं-
साके योग्य क्या है ?

उ उदारता, मननी मोटाइ (पुणीया श्रावककी
तराह) प्रशसा पात्र है

६३ प्र हे प्रज्जु ! प्रज्जुता ठकुराइ विद्यमान होनेपर
जी कौनसी वस्तु प्रशसनीय है ?

उ सहनशीलता, कृमा, गम खानी सो (अज्ज-
य कुमारकी तराह),

६४ प्र हे प्रज्जु ! चितामनी रत्नके समान चार प-
दार्थ कौनसे कौनसे है ?

उ दान, ज्ञान, शौर्य और धन यह चतुर्जेइ
गीने जाते है

६५ प्र. हे प्रज्जु ! अमूढ्य दान कौनसा ? कैसी तरांह ?

उ. प्रिय मिष्ट वचन सहित जो देनेमें आवे सो और विवेकसह दिया गया हो सो दान अमूढ्य है.

६६ प्र. हे प्रज्जु ! अमूल्य (दुर्लभ) ज्ञान क्या है ? और कैसी तरांह ?

उ. गर्व रहित तत्वातत्वका बोध होना सो, और जो ज्ञानसँ आत्मामें आये हुवे (आकर निवास किये हुवे) गर्व वगैरां दोषोंको दूर कर शके सो अमूल्य ज्ञान है.

६७ प्र. हे प्रज्जु ! अमूल्य (दुर्लभ) शौर्य कौनसा ?

उ. कर्मायुक्त हो सो—जो शरीरादिककी शक्ति पाकर परोपकार कीया जाय किसी दुःखी जनका संरक्षण कीया जाय सोही शक्ति प्रमाण है. जिस सखससँ दीन दुःखी पीना पाते हो उनका उद्धार कर शके सो अमूढ्य शौर्य है.

६८ प्र. हे प्रज्जु ! अमूढ्य (दुर्लभ) धन कौनसा कहा जाय ?

उ. जो दानसँ सार्थक कीया जाय, धर्मकी प्र-

जावना—उन्नति दो सोही धन दिसावमें गीनाता है.
वाकीका तो केवल नाररूप ही गीन लेना चाहीए
इए प्र हे प्रभु ! योग इतने क्या ? तिसका व्युत्प-
त्यर्थ कैसा होय ?

उ. मोक्षेण योजनाद् योग मोक्षके साथ जोर
देनेसें योग सर्व सदाचाररूप कहा जाय
७० प्र हे प्रभु ! योगके कितने अंग है ? और वह
कौनसे कौनसे है ?

उ अष्टांग—यम, नियम, -श्रासन, प्राणायाम, प्र-
त्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह आठ यो-
गके अंग है
७१ प्र हे प्रभु ! योग साधनका अधिकारी कौन हो-
शकता है ?

उ मंदकषायी, मध्यस्थ, मिताहारी, अल्पनिद्रा
वंत, सदाचारी और सर्वदा सुप्रसन्न हो सोही योग
साधन करनेका योग्य अधिकारी होता है
७२ प्र हे प्रभु ! अष्टांग योगसें क्या फायदा होता है ?

उ. अणिमा, गरिमा, लघिमादिक वन्नी सिद्धिं
प्रकट होकर यावत स्वर्ग और मोक्षके सुख स्वा-

धीन होते हैं.

७३ प्र. संयम सो क्या ? और नन्सें क्या फायदा हो ?

उ. मन वचन और कायाकी गुप्तिसैं इंद्रिय कषाय और अवतोंका रोध कर आत्माका निग्रह करना सो संयम जान्ना-तिस संयमसैं नये कर्म बंधन होने अटक जाते हैं.

७४ प्र. पूर्व संचित कर्मक्षयका साधन क्या है ?

उ. विवेकपूर्वक समतासैं सेवन कराता हुवा वारह प्रकारका तप निकाचित कर्मकोंजी क्षय कर मा-लता है, और वो तप बलसैं अनेक लब्धिये प्रकट होती है सो तप कर्म क्षयका साधन है.

७५ प्र. मोक्षका अधिकारी कौन कहाजाय ?

उ. समज्ञाव ज्ञावित आत्मा (जाति लिंगकी अपेक्षा बिगर) यतः समज्ञावज्ञाविअप्पा लहइमुस्कं-न संदेहो-अर्थात् चाहेसो समज्ञावि-मध्यस्थ-गुण ग्राही-ज्ञानी पुरुषार्थवंत अवश्य मोक्ष प्राप्त कर श-कता है. याने ऐसे पुरुषही मोक्षके अधिकारी होते हैं.

प्रकरण चौथा.

सर्वज्ञ कथित तत्व रहस्य

१ जीवदया (जयणा) हमेशा पालनी चाहिये
 चलते, बैठते, उठते, सोते, खाते, पीते या
 चोलते याने यह हर एक प्रसंगमें प्रमादसें पिराये
 प्राण जोखममें नहि आजावे तैसे उपयोग रखकर
 चलना सूक्ष्म जतुओंका जिस्से सहार होजाय, तैसा
 खजुरीका जासु वगैरा कचरा निकालनेके लिये क-
 वीची वपराशमें नहि लेना पानीची ठानकर पीना
 ठाना हुवा जलची ज्यादा नहि ढोलना जीवदयाके
 खातिर रात्रिचोजन नहि करना. कदमूल नक्षत्र व-
 र्जित करदेना, जीवदयाके खातिर जहा तहा अग्नि
 नहि सिलगानेका ध्यानमें रखना, क्योंकि अपने प्रा-
 णहीके समान सब जीवोंको अपने अपने प्राण व
 ह्वन है, तो तिन्हके प्रिय प्राणोकी कीम्मत बुझकर
 स्वच्छंदपना ठोरुकर जैसे उन्हुंका वचाव दोशके तैसे
 कार्य करनेमें मथन करना ओर याद रखना के सर्व
 अज्ञहय—मद्य मासादिके नक्षत्रसे कृणिक रसकी

लालचके लीए असंख्य जीवोंको कीमती जानकी खवारी होती है, तिन्हके नाइक संहारसे महान् पाप होनेसे जगत्में महा रोगादि उपड्व उद्भवते है तिन्हा जोग होपरुता है और प्रांत-अंतमें नरकादि घोर दुःखके जागीदार होना परुता है.

५ निरंतर इंद्रिय वर्गका दमन करना.

दरेक इंद्रियका पतंगजंतु, जौरा, मत्स्य, हाथी और हिरनकी तरांह डुरुपयोग करना ठोकर संत जनोंकी तरांह इंद्रियोंका सडुपयोग करके दरेकका सार्थक्य करनेके लीए खंत रखनी चाहिये. एक एक बूट्टी कीहुइ इंद्रिय तोफानी धोमेकी तरांह मालिक-कों विषम मार्गमें लेजाकर खवार करती है, तो पांचोंको बूट्टी रखनेवाला दीन अनाथ जनका क्या हाल होवे ? इसी लिए इंद्रियोंके तावेदार न बनकर जन्होके वश्यकर स्वकार्य साधनमें उचित रीति मुजब प्रवर्त्तावनी चाहिये. किंपाक तुल्य विषयरस समूजकर तिस्की लालच ठोकर संतदर्शन, संतसेवा, संत स्तुति, संत वचन श्रवणादिसे वो इंद्रियोंका सा-

र्थक्य करनेके लिए उद्युक्त रहकर प्रतिदिन स्वहित साधनेकुं तत्पर रहना उचित है

३ सत्य वचनही बोलना

धर्मका रहस्यभूत श्रैसा, अन्यकों हितकारी तथा परिमित जरूर जितनाही ज्ञापण श्रौसर उचित करना, सोही स्वपरको हित कट्याणकारी है क्रोधादि कणायके परवश होकर वा ज्ञयसे या हासीके खातिर अज्ञजन असत्य बोलकर आप अपराधी होते है, सो खास ख्यालमें रखकर तैसे वख्तमें हिम्मत धारण कर यह महान् दोष सेवन नहि करना सत्यसे युविष्टिर, धर्मराजाकी गिन्तीमें गिनाये गये, श्रैसा जानकर असत्य बोलनेकी या प्रयोजन बिगर बहोत बोलनेकी आदत ठोरुकर हित मितज्ञापी बनजाना, किसीकों अप्रीति—खेद पैदा होय तैसी बोलनेकी आदत यत्नसें ठोरुदेनी.

४ शील कबीजी ठोरुना नहि

ब्रह्मचर्य व्रत या सदाचारके नियमे चाईं वैसं सकटमें जी लोप देनेकी ऽथा नहि करना सत्यवत

अपने ब्रतोंको प्राणोंकी समान गिनते है, और प्राणोंत तलक तिन्हकी खंमना नहि करते है याने अखंमब्रती रहेते है, सोही सबे शुरविर कहे जाते है.

५ कवीजी कुशील जनके संग निवास करना नहि.

तैसे हलके आचारवालेके साथ रहेनेसे ' सोवते असर ' यह कहेनावत मुजब अपने अछे आचारोंको अवश्य धोखा-धक्का पहुंचता है और लोकापवादी आता है इसीलिये लोकापवाद जरीजनोंको तैसे ब्रह्मचारियोंकी सोवत सर्वथा त्याग देनेही योग्य है. सोवत करनेकी चाहना हो तो कल्पवृक्षके समान शीतल ठाणके देनेवाले संत पुरुषकीही सोवत करो, जिसेसे सब संसारका ताप टालकर तुम परम शांत रस चाखनेको जाग्यशाली बन शको.

६ गुरु वचन कदापि लोपना नहि.

एकांत हितकारी-सत्य-निर्दोष मार्गकोही सदा सेवन करनेवाले और सत्य मार्गको दिखानेवाले सद्गुरुका हित वचन कदापि लोपन करना नहि.

किन्तु प्राणात तक तद्वत् वर्तन करनेको प्रयत्न करना यही शास्त्रका साराश है तैसे सद्गुरुकी आज्ञा पूर्वकही सब धर्म कर्म—कृत्य सफल है अन्यथा निष्फल कहाजाता है इस लिये सदा सद्गुरुका आशय समूझकर तद्वत् वर्तनमें उद्युक्त रहेना यही सुविनीत शिष्यका शुद्ध लक्षण है

७ (अ) चपलता—अजयणासैं चलना नहि

अजयणासैं चलनेके सबवसैं अनेकश स्वलना होनेके उपरात अनेक जीवोंका उपघात, और किंचित् अपनाज्जी घात होनेका सञ्भव है इस लिये चपलता गोरुकर समतासे चलना, जिस्सैं स्व परकी रक्षा पूर्वक आत्माका हित साध शके

(ब) उद्भट वेप पहेरना नहि

अति उद्भट वेप—पोषाक धारण करनेसँ याने स्वच्छंदपना आदरनेसैं लोगोंके नीतर हासी होती है, इसलिये आमदनी और खर्चा देखकर—तपास कर घटित वेप धारण करना जिस्की कम आमदनी हो उसको जुग दबदबेवाला पोषाक नहि रखना चाहिये

तथा धनवंत हो उस्कों मलीन—फट्टे टूटे हालतवाला पोपाक रखना वोच्ची वेमुनासीव है.

८ वक्र—विषम दृष्टिसँ देखना नहि.

सरल दृष्टिसँ देखना, इसमें व्होतसँ फायदे समाये है. शंकाशीलता टल जाय, लोगोंमे विश्वास बैठे, लोकापवाद न आने पावे, स्व परहित सुखसँ साध सके, ऐसी समदृष्टि रखनी चाहिये. अज्ञान ताके जोरसँ बांका बोलकर और बांका चलकर जीव व्होत दुःखी होते है; तदपि यह अनादिकी कुचाल सुधार लेनी जीवकों मुश्किल परती है. जिस्की जाग्रत दशा जाग्रत हुइ है वा जाग्रत होनेकी हो वोही सीधे रस्ते चल शकता है, ऐसा समूजकर धुम्रकी मुठी ज़रने जैसा मिथ्या प्रयास नहि करतें सीधी समकपर चलकर स्वहित साधन निमित्त सुइ मनुष्यकों चूकना नहि चाहिये. ऐसी अच्ची मर्यादा समालकर चलनेसँ क्रुधित हुवा दुर्जनजी क्या विरुद्ध बोल सके ? कुञ्जनी गिइ नहि देखनेसँ किंचित एनी तेनी बातजी नहि बोल सकता है. इसलिये निरंतर

समदृष्टि रखकर चलना के जिस्सें किसीकों टीका करनेकी जरूर न पने

ए अपनी जीव्हा नियममें रखनी

जीव्हाकों वश्य करनी, निकम्मा बोलना नहि, जरूरत मालुम हो तो विचारकर हितमितही ज्ञापण करना अगर रसलपट होकर जीव्हाकों वश्य पम् रोगादि उपाधि खनी होती है. तथा मर्यादा ब्दार जाना नहि जीज्ञके वश्य पने हुवेकी दूसरी इज्जियें कुपित होकर तिन्होंकों गुलाम बनाके बहोत ड ख देती है. इस हेतुसें सुखार्थी जन जीज्ञके ताबे न होकर जीज्ञकोंही ताबे कर लेवे वोही सबसे व-हेतर है.

१० बिना विचारे कुञ्जनी काम नहि करना

सद्दसा—अविवेक आचरणसें बनी आपदा—विपत्ति आ पम्ती है और विचारकर विवेकसें वर्तने वालेकों तो स्वयमेव सपदा आ कर अगीकार कर लेती है. वास्ते एकाएक साद्दस काम कीये विगर लबी नजरसें विचारके, उचित नीति आदरके वर्तना

के जिस्से कबीत्री खेद-पश्चाताप करनेका प्रसंगही आता नहीं, सहसा काम करने वालेकों वदोत करकेँ तैसा प्रसंग आये बिना रहेताही नही है.

११ उत्तम कुलाचारकों कबीत्री

लोपन करना नहि.

उत्तम कुलाचार शिष्ट-मान्य होनेसेँ धर्मके श्रेष्ठ नियमोकी तरांह आदरने योग्य है. मद्यमांसादि अन्नहय वर्जित करना, परनिंदा ठोर देनी, हंसवृत्तिसेँ गुणमात्र ग्रहण करना, विषयलंपटता-असंतोष तजकर संतोष वृत्ति धारण करनी, स्वार्थवृत्ति तजकेँ निःस्वार्थपनसेँ परोपकार करना, यावत् मद मत्सरादिका त्याग कर मृडुतादि विवेक धारणरूप उत्तम कुलाचार कौन कुशलकुलीनकों मान्य न होय ? ऐसी उत्तम मर्यादा सेवन करने वालेकों कुपित हुवा कलिकालजी क्या कर शकता है ?

१२ किसीको मर्मवचन कहेना नहिं.

मर्म वचन सहन न होनेसेँ कितनेक मुग्ध लोग मानके लिये मरणके शरण होते है, इस लीये तैसा

परकों परितापकारी वचन कबीजी उच्चरना नहि मृदुजापा स्हामने वालेकोंजी पसद परुता है चाहे तेसा स्वार्थ जोगसें स्हामनेवालेका हित होय वैसा-ही विचारकर बोलना. सज्जनकी तैसी उत्तम नीति कबीजी उच्चघनी नहि. लोगोंमेंजी कहेनावत है कि ' शक्करसें जहातक पित्त समन हो जाय वहा तक चिरायता कोहेकुं पिलाना चाहिये ? '

१३ किसीकों कबीजी जूठा कलक नहि देना.

किसीकों जूठा कलक देनेरुप महान् साहससें बुराही परिणाम आनेको उग्र संज्ञवसें सर्वथा निन्द्य तथा त्याज्य है दूसरेकों डु ख देनेकी चाहना करने वाला आपही डु ख माग लेता है क्योंकि कहेनावत है कि—' खझा खोदे सोही परे ' श्याने जनकों इतनीजी शिखामन बस है जैसें कुशिकितकों अपनाही शस्त्र अपनाही प्राण लेता है तिन्हके सादृश इन्कोंजी समूजकर सच्चे सुखार्थी होकर सत्य और हित मार्गपरही चलनेकी जरूरत रखनी उचित है कहेनावतजी चली आती है कि—' साचकों कोहेकी आच ? '

१४ किसीको ज़ि आक्रोश करके कहेना नहि.

कोप करके किसीको सच्ची बात ज़ि कहेनेसे लाजके बदलेमें गैरलाज हाथ आता है, इस वास्ते आक्रोश करके कहेना ठोकर स्वपरको हितकारी और नम्रताइसे सच्ची बात विवेकपूर्वकही कहेनेकी आदत रखनी चाहिये. समजदार मनुष्यको लाजा-लाजका विचार करकेही वर्तना घटितहै. यही कठिन सज्जन रीतिहै कि जो हरएक हितार्थियोंको अवश्य आदरणीय है.

१५ सबके उपर उपकार करना.

मेघकी तरांह सम विषम गिनना ठोकर सबपर समान हितबुद्धि रखनी. वृक्ष नीचे उंच सबको शीतल ठांठ देता है, गंगजल सबका समान प्रकारसे ताप दूर करता है, चंदन सबको समान सुगंधी देता है. वैसेही उपकारी जन जगत्मात्रका उपकार करता है. अपकार करनेवाले परज्जि उपकार करे सोही जगत्में बुरा गिनाजाता है.

१६ उपकारीका उपकार कच्ची झूलना नहि.

कृतज्ञजन किये हुवे उपकारको कच्ची नहि झूलता है और जो मनुष्य किये हुवे उपकारकों झूल जाता है वो कृतघ्न कहा जाता है और इस्ते ज्ञी जो जन उपकारीका अहित करनेकों इहे वो तो महान् कृतघ्न जाणना माता, पिता, स्वामी और धर्मगुरुके उपकारका बदला दे शके ऐसा नहि है तथापि कृतज्ञ मनुष्य तिन्होकी बनशके जितनी अनुकूलता सज्जालकर तिन्हके धर्मकार्यमें सहायजूत होनेके लिये ठिक ठिक प्रयत्न करे तो कदापि अनृणी हो शकता है सत्य सर्वज्ञ ज्ञापित धर्मकी प्राप्ति कराने वाले धर्मगुरुका उपकार सर्वोत्कृष्ट है ऐसा समूझकर सुविनीत शिष्य तिन्हकी पवित्र आज्ञामें वर्तनेके लिये पूर्ण खंत रखता है और यह फरमानसे विरुद्ध वर्तन चलानेवाले गुरुझेही महा पातकी गिने जाते है

१७ अनाथको योग्य आश्रय देना

अपनी आजीविकाके विषे जिन्होको कुञ्जी

साधन नहि है. जो केवल निराधार है. ऐसे अशक्त अनार्थोंको यथायोग्य आलंबन-आधार-आश्रय देना यह हर एक शक्तिवंत-धनाढ्य दाने मनुष्योंकी खास फरज है. दुःखी होते हुवे दीन जनोंका दुःख दिलमें धारण करके तिन्होंको वख्तके उपर विवेकपूर्वक मदद देनेवाले समयको अनुसरके महान् पुन्य उपार्जन करते हे. और तिन्हके पुन्यबलसे लक्ष्मीजी अखूट रहेती है. कुंएके पानीकी तरांह बनी उदारतासे व्यय की हुइ हो तोजी उदारताकी लक्ष्मी पुन्यरूपी अविच्छिन्न जल प्रवाहकी मददसे फिर पूर्ण होजाती है. तदपि कृपणको ऐसी सुबुद्धि पूर्व अंतरायके योगसे ध्यानमें पैदाही नहि होती है, तिस्सें वो विचारा केवल लक्ष्मीका दासत्वपना करके अंतमें आर्त्तध्यानसे अशुभ कर्म उपार्जके हाथ घसता-रीते हाथसें यमके शरण होता है. वहां और उसके बादजी पूर्व अशुभ अंतराय कर्मके योगसें वो रंक अनार्थको महा दुःख झुक्तना परता है. वहां कोइ शरण-आधारजूत होता नहि है. अपनीही जूल अपनको नरुती है. कृपणजी प्रत्यक्ष देख शकता है कि कोइजी एक कवडी-कौ-

मीज़ी साथ बाधकर द्याया नहि और अवसान स-
 मय कौमी बाधकर साथ ले जा शकेगाजी नहि,
 तदपि विचारा मम्मण शेठकी तगह महा आर्त्तध्यान
 धरता और धन धन करता हुवा जूर जूरके मरता
 है और अंतमें वो बहोतही बूरे विपाक पाता है
 यह सब कृपणताके कटुफल समूझकर अपनकोजी
 तैसेही बूरे विपाक चुक्तने न पने, इस लिये पानी
 पहले पाल बाधनेकी तराह अबलसेही चेतकर अ-
 पनी लक्ष्मीके दास नहि लेकिन स्वामी बनकर उ-
 स्का विवेकपूर्वक यथास्थानमे व्यय करके तिस्की
 सार्थकता करनेके लिये सद्गृहस्थ ज्ञाश्योंको जाग्रत
 होनेकी खास जरूरत है नहि तो याद रखना कि,
 अपनी केवल स्वार्थ वृत्तिरूप महान् जूलके लिये अ-
 पनकोही आगे दुःख सहन करना पड़ेगा, इसिलिये
 हृदयमे कुठजी विचार-पश्चाताप करके सच्चा पर-
 मार्थ मार्ग अगीकार कर अपनी गजीर जूल सुधार
 लेनेको चुकना सो श्याने सद्गृहस्थोंको योग्य नहि
 है श्री सर्वज्ञ प्रभुने दर्शाया हुवा अनंत स्वाधीन
 लाज गुमा देना और अंतमें रीते हाथ धिसते जाकर

परत्रवमें अपनेही किये हुवे पापाचरणके फलका स्वाद अनुत्रवे यह कोइनी रीतिसें विचारशील सद्-गृहस्थोंकों लाजीम शोन्नारूप नहि है. तत्वज्ञानी पुरुषोंके यही हित वचन है. जो पुरुष यही वचनोंकों अमृत बुद्धिसें अंगीकार कर विवेकपूर्वक आदरते है सो अत्र और परत्र अवश्य सुखी होते है.

१७ किसीके अगामी दीनता दिखलानी नही.

तुष्ट स्वार्थकी खातिर दूसरेके अगामी दीनता बतानी योग्य नहि है. यदि दीनता-नम्रता करनेकों चाहो तो सर्व शक्तिमान सर्वज्ञकी करो. क्योंकि जो आप पूर्ण समर्थ है और अपने आश्रितको जीरु ज्ञांग शकते है. मगर जो आपही अपूर्ण अशक्त है वो शरणागतकी किस प्रकारसे जीरु ज्ञांग शके ? सर्वज्ञ प्रभुके पास जी विवेकसे योग्य मंगनी करनी योग्य है. वीतराग परमात्माकी किंवा निर्ग्रन्थ अणु-गारकी पास तुष्ट सांसारिक सुखकी प्रार्थना करनी उचित नहि है. तिन्होंके पास तो जन्म मरणके

दुःख दुर करनकीही अगर जवजवके दु ख जिस्सें हट जाय ऐसी उत्तम सामग्रीकीही प्रार्थना करनी योग्य है यद्यपि वीतराग प्रज्जु राग छेप रहित है, तथापि प्रज्जुकी शुद्ध जक्तिका राग चितामनी रत्नकि सादृश फलीज्जुत हुए विगर रहेता नहि शुद्ध जक्ति यहज्जी एक अपूर्व वश्यक प्रयोग है. जक्तिसें कठिन कर्मकाज्जी नाश हो जाता है, और उसीसें सर्व संपत्ति सहजहीमे आकर प्राप्त होती है ऐसा अपूर्व लाभ गोरुकर वबूलकों जाथ जरने जैसी तुष्ट विषय आशंसनासें विकल्पनसें तैसीही प्रार्थना प्रज्जुके अगामी करनी के अन्यत्र करनी यह कोश प्रकारसें सुज्ञजनोकों मुनामिवही नहि है सर्व शक्तिवत सर्वज्ञ प्रज्जुकी समीप पूर्ण जक्ति रागसें विवेक पूर्वक ऐसी उत्तम प्रार्थना करो यावत् परमात्म प्रज्जुकी पवित्र आज्ञाको अनुसरनेके लिये ऐसा उत्तम पुरुषार्थ स्फुरायमान करो के जिस्सें जवजवकी जावठ टलकर परमसपद प्राप्तिसे नित्य दिवाली होय, यावत् परमानंद प्रकटायमान होय, मतलबकि अनंत अबाधित अक्षय सहज सुख होय सेवा करनी तो ऐसेही स्वा

मिकी करनीके जिस्सैं सेवक जी स्वामिके समान ही हो जावे.

१९ किसीकी जी प्रार्थनाका जंग करना नहि.

मनुष्य जब बन्नी मुशीवतमें आ गया हो त-
वही बहोत करके गर्व टेक ठोकर दूसरे समर्थ
मनुष्यकों अपनी जीम ज्ञांगनेकी आशासैं प्रार्थना
करता है. ऐसैं समूजकर दानेदिलका श्याना और
समर्थ मनुष्य तिस्की प्रार्थना योग्य ही होय तो
तिस्का प्राणांत तकजी जंग नहि करके स्हामने
वालेका दुःख दूर करने लायक जो कुठ देना उचित
हो सोजी प्रिय ज्ञाषण पूर्वकही देना, लेकिन उहूँ-
खलवृत्तिसैं देना नहि. प्रियवाक्य पूर्वक दान देना
सोही ज्ञूषणरूप है अन्यथा दूषणरूप ही समजना.
ऐसा हिताहितको विवेक पूर्वक सुझ मनुष्यकों वर्तन
चलानाही योग्य है. नहि तो दिया हुवा दानजी
व्यर्थ हो जाता है और मूर्खमें गिनती होती है.

१० दीनवचन बोलना नहि.

दीन वचनोसें मनुष्यका जार-बोज हलका होजाता है और फिर सुझजन परीक्षाजी करलेते है कि यह मनुष्य कपटी या तो खुशामदखोर है गुण वंतकों गुणि जानकर उचित नम्रता बतानी वो दीन पनेमें गिनीजाती नहि है गुणी पुरुषोके स्वाज्ञाविक ही दास बनकर रहेना यह अपनेमे स्वाज्ञाविक गुण-प्राप्तिके निमित्त होनेसे वो दूषितही नहि गिनाजाता है, इसिलिये विवेक लाकर जरूरत हो तब अदीन जापण करना कि जिसें स्वार्थ हानि होने नहि पावे और यह उत्तम नियमे विवेकी जन जीवन पर्यंत निजावे तो अत्यंतही दोषारूप है

११ आत्मप्रशंसा करनी नहि

आत्मश्लाघा याने आप बमाइ करके खुश होना यह महान् दोष है इसें महान् पुरुषोका अपमान होता है ऐसें महत्पुरुषोंकी आशातना-अवमानता करनेसें कर्मबधन कर आत्मा दु खी होता है सज्जन पुरुषोंकी यही रीतिही नहि है सज्जन

धुरुषो तो दूसरेका परमाणु जितनाजी गुणोंको व-
खानते है, और अपना मेरुकेसमान वने गुणोकाजी
गान नहि करते. तो गुणके विगर घमंम रखकर अ-
पूर्ण घटकी तरह न्यूनता दिखानी सो कितनी बनी
मूल और विचारने जैसी बात है. यह बातका वि-
चार कर पूर्ण घमेकी समान गंजीरताइ धारण करनी
शीख लेनी और आप वनाइ करनी ठोरु देनी; क्यों
कि आप वनाइ करनेमें कदम दर कदम पर निंदाका
दोष लगता है. पर निंदाके पाप अति बूरे होनेसें
मिथ्या आप वनाइ करनेवाला प्राणी तैसें पापकर्मोंसें
अपने आत्माको मलीन कर परज्वमें या क्वचित्
यही ज्वमें बहोत दुःखी हालतमें आजाता है.

११ दुर्जनकीजी कबी निंदा नहि करनी.

परनिंदा करनेसें कुठजी फायदा नहि है, म-
गर निंदा करनेवालेको वना गेरफायदा होता है.
अपना अमूढ्य वरुत गुमाकर आपही मलीन होता
है. निंदा यह स्हामनेवालेको सुधारनेका मार्ग नहि
है किंतु विगारनेका रस्ता है, एसो कहाजाय तो

कुठ जूठा नहि है सज्जन जनतो तैसे निदकोसैं
 ज्यादा ज्यादा जाग्रत-सचेत रहकर गुण ग्रहण क-
 रते है लेकिन दुर्जन तो ठलटे कुपित होकर दुर्जनता-
 कीही वृद्धि करते है इसलिये दुर्जनको निदासेत्री
 हानिही हाथ आती है सत-सज्जनोकी निदासैं
 सज्जन जनकोतो कुठनी औगुन मालुम होता नहि
 है; तदपि तैसे उत्तम पुरुषोकी नाहक निदा करनेसैं
 आशयकी महा मलीनता होनेके लिये निकाचित्
 कर्मबधकर निदक नरकादि अधोगतिमेही जाते है
 निदा, चानी, परशेह तथा असत्य कलक चरानेवाले
 वा हिंसा, असत्य ज्ञापण, पर ड्य हरण और परस्त्री
 गमनादि अनीति वा अनाचार करनेवाले, क्रोधाघ,
 रागाघ होनेवालेके जो जो बूरे हाल होनेका शास्त्र-
 कारोंने वर्णन कीया है वो, तथा तिस संवधी हित-
 बुद्धिसैं जो कुठ कहेना वो निदा नहि कही जाती
 है, मगर हितबुद्धि विगर द्वेषमें पिरायेकी बातें कर
 दिल दुजाना सो निदा कहि जाती है और वह निद
 है, इसलिये नाम लेकर पिरायेकी वदी करनेका मि-
 थ्या प्रयास करना नहि कवी निदा करनेका दिल

हो जाय तो सच्चे और अपनेही दोषोंकी निंदा करनी कि जिसे कुठजी दोषमुक्त होता है. केवल दोषोंकी निंदा करनेसे कुठ कार्य सिद्धि नहि होती, तोजी परनिंदासे स्वनिंदा बहोतही अच्छी है.

२३ बहोत हंसना नहि.

बहोत हंसना सो जी अहितकारी है. बहोत हंसनेसे परिणाममें रोकना प्रसंग आता है. हंसनेकी बुरी आदत मनुष्योंकी बनी आपत्तिमें ढालती है. बहोत बखत हंसनेकी आदत होनेसे मनुष्य कारणसे या बिगर कारणसे जी हंसता है और वैसा करनेसे राज्यसत्ता या अंतःपुरमें हंसनेवालेकी बनी खराबी होती है, इसिलिये वो बुरी आदत प्रयत्न करके छोड़नीही योग्य है. कहेनावतजी है कि 'हंसी विपत्तिका मूल है,' हाथसे करके जीकों जोखममें ढालना हो वा हाथसे करके उपाधि खानी करनी हो तो ऐसी कुटेव रखनी. अन्यथा तो तिसकों त्यागदेनी उसमेंही सुख है. सच्य जनकीजी यही नीति है. सुमुक्षु-मोक्षार्थी संत सुसाधुओंको तो वो

कुटेव सर्वथा त्यागदेन लायकही है ऐसी अच्छी नीति पालन करनेसेही प्राणी धर्मके अधिकारी बनकर सर्वज्ञ ज्ञापित धर्मको सम्यग् प्रमाद रहित सेवन कर सद्ज्ञाग्यके ज्ञागीदार होके अतमें अक्षय सुख संपादन कर सकता है

१४ वैरीका विश्वास करना नहि

विश्वास नहि करने योग्य मनुष्यका विश्वास करनेसें बनी दानि होती है, इस लिये पहिलेसेंही खबरदार रहेना कि जिसें पीठेसें पश्चात्ताप नहि करना पमे काम, क्रोध, मद, मोह मत्सरादिकों अतरंग शत्रु समूजकर तिन्होंका कवीजो विश्वास सचे सुखार्थीको करना योग्य नहि है सर्वज्ञ प्रजुने पच प्रमादोंको प्रबल शत्रुजुत रुहे है

जिस्के योगसें प्राणी प्ररुपकर स्व कर्तव्यसें ब्रष्ट हो यावत् बेज्ञान होता है सोही प्रमाद कहा जाता है मद्य, विषय, कपाय, निज्ञ और विकथा यह पाच प्रमाद है और यह पाचोंमेसें एक हो तो जी महा दानिकारी है, और जब पाचों प्रमादोंके

वश जो मनुष्य परु गया हो उसका तो कहे-
नाही क्या ?

मद्यपानसें लहमी, विद्या, यश, मानादिकी
हानि होती है सो जगत् प्रसिद्ध है.

विषय विकारके तावे होनेवाला बन्ना योगीश्वर
हो, ब्रह्मा हो तोज्नी स्त्रीका दास बन जाता है और
हिम्मत हारकर एक अवलाकाज्नी दीन दास बनता
है यही विषयांधका फल है.

कषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ यह
चारोंकी चंभालचोकनी कहीजाती है. तिन्हका संग
करनेवाला यावत् तिस्में तन्मय होकर वा हुवा क्रो-
धांध यावत् लोभांध कुबज्नी कृत्याकृत्य हिताहित
देख सकता नहि. कषाय—कलुषित मति फिर कुब
औरही नया देखाव देता है. बूढ़ा है पर बालककी
तरांह और पंडित है पर मूर्खकी तरांह यावत् जूल-
ग्रस्तकी मुवाफिक विपरीत—विरुद्ध चेष्टा करता है,
जिस्में तिस्का बन्ना लोकापवाद प्रसरता है. कषा-
यांध विवेकशून्य पशुकी तरांह अपमान पाता है.
यावत् बूरे हालसें मृत्यु पाकर दुर्गतिकाही ज्ञागी

होता है, इसलिये क्रोधादि कपायकी सेवा करनेवाले-
 कों मनुष्य नहि मगर हैवान समूजना कटा दुश्म-
 नसेंजी ज्यादा खाना खराबी करनेवाले कपायही है,
 ऐसा समूजकर कुठ हृदयमें ज्ञान लाया जाय तो
 अन्ना कटा शत्रु एकही जवमें दु ख दे शकता है,
 लेकिन यह कपाय शत्रु तो जवजवमें दु ख दे
 शकते है

निज्ञ देवीके परवश पने हुवे प्राणीकीजी व-
 होत बुरी हालत होती है जो निज्ञके तावे न होकर
 निज्ञकोही तावे करलेकर विवेक धारण करते है तिन
 महाशर्योंकों लीलाब्देर होती है

विकथा—जिस्के अंदर स्व पर हित तत्वसें स-
 स्कारित न हुवा हो, तैसी वाहियात बातें करनी से
 विकथा कहीजाती है राजकथा, देशकथा, स्त्रीकथा,
 तथा जक्त—जोजन कथा यह चार विकथाकों त्याग
 कर जिस्सें स्व पर हित अवश्य साध शके तैसी धर्म
 कथा कहेनी योग्य है विकथा करनेवालेका कीमती
 वस्तु कौमीके मूढ्यमें चलाजाता है, और विवेकपूर्-
 वक धर्मकथा कहेनेवालेका वस्तु अमूल्य गिनाजाता

है; तदपि विवेक विकल लोग विकथा वर्जकर उत्तम धर्म कथासँ वखतकों सार्थक करनेके वास्ते खंत नहि रखते है, तो तिन्होंको आगे वहीत पस्तानाही पनेगा. और जो विवेकपूर्वक यह हितोपदेशकों हृदयमें धारणकर तिस्का परमार्थ विचारकें सीधे रस्ते चलेंगे तो सर्वत्र सुखी होंगे. सच्चे सुखार्थी जन यह पापी पांचों प्रमादके फंदमें न फंसकर अप्रमाद दंभसँ तिन्होंका नाश करनेकेलिये उद्युक्त रहेनाही डुरुस्त धारते है. अप्रमादके समान कोइजी निष्कारण निःस्वार्थि वांधव नहि है. इसलिये पापी प्रमादोंके परका विश्वास परिहरके महा उपकारी अप्रमाद वांधवमेंही सर्व विश्वास स्थापन करना कि जिस्सँ सर्वत्र यश प्राप्त होय.

१५ विश्वासुकों कबीजी दगा देना नहि.

विश्वास रखकर जो शरण आवे उस्कों दगा देना उस्के समान कोइ एकजी ज्यादा पाप नहि है. वो गोदमें सोते हुवेका शिर काट देने जैसा जुद्धम है. अच्चे अच्चे बुद्धिवाली लोगजी धर्मके लिये वि-

श्वास करते हैं तैसे धर्मार्थी जनोंको स्वार्थांध बन-
 कर धर्मके ब्हानेही उगलेवे यह वरुा अन्याय है.
 आपहीमें पोलंपोल होवे तोजी गुणी गुरुका आरुं-
 वर रचकें पापी विषयादि प्रमादके परवशपनेसैं
 जोले लोगोंको उगलेवे तिनके जैसा एकजी विश्वा-
 सघात नही है जोले ज्ञक्त जानते हैं कि अपन गु-
 रुकी ज्ञक्ति करकें गुरुका शरण लेकर यह ज्ञवजल
 तिर जाएगे लेकिन पत्थरके नावकी मुवाफिक अ-
 नेक दोषोंसैं दूषित है तो जी भिष्या महत्वकों इ-
 छनेवाले दंजी कुगुरु आपको और परिक्षा रहित
 अंधप्रवृत्ति करनेवाले आपके जोले आश्रित शिष्य
 ज्ञक्तोंकों, ज्ञव समुद्रमें डूबा देते हैं और ऐसैं स्व
 परकों महा दुःख उपाधिमें दाशसे माल देते हैं, जो
 ऐसा कार्य करते हैं वो धर्मठग कुगुरुजको यह स-
 सार चक्रमें परिभ्रमण करनेमें समय महा कटु फ-
 लका स्वादानुज्ञव लेना पनुता है इस वास्नेही श्री
 सर्वज्ञ देवने धर्मगुरुजको रहेणी कहेणी वरोवर र-
 खकर निर्दंजतासैं वर्तनेकाही फरमान कीया है.
 अपन प्रकटतासैं देख शकते हैं कि कितनेक कुम-

तिके फंदमें फंसे हुवे और विषय वासनासँ पूरित हुवे हो तदपि धर्मगुरुका मौल-स्वांग धारण कर केवल अपना तुच्छ स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये अनेक प्रपंच जाल गुंथन कर और अनेक कुतर्क करके सत्य और हितकर सर्वज्ञके उपदेशकोंनी बुपाते है इस तरहसँ आप धर्मगुरुही धर्मठग बनकर जोले हिरन सादृश केवल कर्णोडिये लोलूपी आंखे मीचकर हाजी हा करनेवाले अपने आश्रित जोले जक्तोंकों ठगकर स्वपरका विगामते है. सो विवेकी हंस कैसेँ सहन कर सकें ? दिन प्रतिदिन वो पापी चेष पसार कर डुनियांकों पायंमाल करते है, तिस्सेँ वो उपेक्षा करने लायक नहि है. जगत् मात्रकों हित शिक्षा देनेकेलिये बंधाये हुवे दिक्षित साधुजकि जो सर्वज्ञ प्रभुकी पवित्र आज्ञा-वचनोंकों हृदयमें धारण करनेवाले और निष्कपटतासँ तदवत् वर्तनेकों स्वशक्ति स्फुराने हारे और समस्त लोभ लालचकों ठोमकर जन्म मरणके दुःखसँ रुकर लेश मात्रनी वीतराग वचनको बुपाते श्री सर्वज्ञकी आज्ञाकों पूर्ण प्रेमसँ आराधनेकी दरकार कर रहे है, वोही

धर्मगुरुके नामकों सत्यकर बतानेकों शक्तिमान् हो सकते है तैसे सिद्ध किशोरही सर्वज्ञके सत्य पुत्र है, दूसरे तो हाथीके दातोंकी समान दिखानेके दूसरे और खानेके-चर्वण करनेके जो दूसरे है तिनके नामकों तो केठ कोसका नमस्कार है । जो ज्यो । विवेक चरु खोलकर सुगुरु और कुगुरु-सञ्चे धर्म गुरु और धर्मगकों बराबर पिठानके लोजी, लालचु और कपटी कुगुरुकों काले सापकी तरह सर्वथा त्याग कर अज्ञान शरण धर्मधुरधर सिद्धकिशोर समान सत्य सर्वज्ञ पुत्रोका परम जक्ति जावसें सेवन-आगधन करनेकों तत्पर हो जात । जिसें सब जन्म जरा और मरणकी उपाधी अलग कर तुम अतमें अक्षय पद प्राप्त करो । उत्तम सारथी या उत्तम नियामक समान सद्गुरुकेही दृढ आलचनसें अगामीजी असख्य प्राणि यह दु खमय ससारका पार पाये दे अपनकोंजी ऐसाही महात्माको सदा शरण हो ऐमे परोपकारशील महात्मा कबीजी प्राणात तकजी परवचन करतेही नहि

१६ कृतघ्नता—किये हुवे गुणका लोप कबीजी नहि करना.

उत्तम मनुष्य औगुनके उपर गुन करते है. मध्यम मनुष्य दूसरेने गुन कीया हो तो आप अपनी वखत हो उस वखत तबने जितना बदला देना धारते है; परंतु अधम मनुष्य तो किये हुवे गुनका जी लोप करता है. ऐसी अधम वृत्तिवाले अज्ञानी अविवेकी जनसें तो कुत्तेजी अडे गिनजाते है, के जो थोमाजी रोटीका टुकटा या खोराक खाया हो, तो खिलानेवालेकों देखकर अपनी पुंठ हिलाकर खुश हो अपना कृतज्ञपना जाहेर करते हुवे उनके घरकी रात दिन चोकी करते है ऐसा समझकर कृतज्ञता आदर कर धर्मकी ल्यायकात प्राप्त कर कुठजी धर्म आराधना करके स्व-मानवपना सार्थक करना. अन्यथा मातुश्रीकी कुक्षीकों धिःकार पात्र बनाकर-शरमींदी बनाकर जूमिकों केवल ज्ञारज्जुत होने जैसा है. समझ रखना कि, कृतज्ञ विविकी रत्नोंकीही माता रत्नकुक्षी कहाती है. ऐसा

न्यायका रहस्य समझकर स्वपर हितकारी विवेक धारण करनेका यत्न करना.

१७ सदगुणीकों देखकर प्रसन्न होना.

वो प्रमोद या मुदिता ज्ञाव कहा जाता है चंडकों देखकर चकोर जैसे खुशी होता है, और मेघ गर्जना सुनकर मयूर जैसे नाचता है तैसे सदगुणीकों दर्शन मात्रमें ज्ञव्य चकोरकों हर्ष-प्रकर्ष होना चाहिये. इसरेके सदगुणोंकी प्रतीति हुवे पीठेजी तिनके उपर छेप धरना ये दुर्गतिकाही द्वार है, वास्ते केवल उ खदाइ छेपबुद्धि त्यागकर सदैव सुखदाइ गुणबुद्धि धारण कर विवेकी हसवत्त होनेके लिये सदगुणीकों देखकर परम प्रमोद धारण करना.

१८ जैसे तैसेके संग स्नेह करना नहि

‘मूर्ख साथ सनेहता, पग पग होवे कलेश’
ए उक्ति अनुसार मूर्ख कुपात्रके साथ प्रीति बंधनी नहि क्योंकि मूर्खकी प्रीतिसँ अपनीजी पत जाती है यदि स्नेह करना चाहते हो तो विवेकी हससदृश, संत-सुसाधु जनके साथही करो कि जिससँ तुम

अनादि अविवेक त्याग कर सुविवेक धारनेमें समर्थ हो सको. खास याद रखना चाहिये कि, संत सुसाधुके समागम समान दूसरा उत्तम आनंद नहि है. ऐसा कौन मूर्खशिरोमणि हो कि अमृतकों ठोकर हालाहल विष सादृश अविवेकी-कुशीलकी संगति चाहे ? श्याना मनुष्य तो कवीन्नी न चाहेगा ! जो ज्ञानिये जैसी वृत्तिवाला होगा सो तो जहां तहां अज्ञानि स्थानमेंही जटकता फिरेगा नस्में क्या आश्चर्य है ? क्योंकि जिसका जैसा जाति स्वप्नाव होवे वैसाही कृत्य कीया करे. ऐसे नीच जनोंकी सोवत-सें अठे सुशील मनुष्योंकों नी क्वचित् ठिंटे लगते है.

१५ पात्रपरीक्षा करनी चाहिये.

जैसें सुवर्णकी कष, ठेदन, तापादिसें परीक्षा कीइ जाती है, जैसें मोतिकी उज्वलता आदिसें परीक्षा कीइ जाती है, तैसें उत्तम पात्रकी नी सुबुद्धिसें सदगुणोंकी परीक्षा करनी चाहिये. सुपात्रकी अंदर उत्तम वस्तु शोभायमान या कायम होती है.

सुपात्रमें विवेक पूर्वक बोया हुआ उत्तम बीज शुद्ध जूमिकी तरह उत्तम फल देता है ठीकमें पका हुआ स्वातिजल विंडुका सच्चा मोति पकता है, और सा-पके मुखमें पका हुआ बोही (रसाति) जलविंडु इहे-ररूप होता है, वास्ते पात्र परीक्षा कर दान, मान, विद्या, विनय और अधिकार वगैरा व्यवहार करना योग्य है सुपात्रमें सब सफल होता है, और कुपा-त्रमें नफेके बदले टोटा-अनर्थ पैदा होता है. इस-लिये पात्रा पात्रका विवेक बुद्धिशालीकों अवश्य क रना कि जिस्में स्वपरकों अत्र समाधि पूर्वक धर्मा राधनमें परत्र-परलोकमें भी सुखसंपत्ति होती है, सोही बुद्धि प्राप्तिका शुद्ध फल है.

३० अकार्य कबीली करना नहि

प्राणाततक भी नही करने योग्य निश्च कार्य सक्कन जन करतेही नही है जो लोग प्रमाद वश होकर (परवशातासें) लोग विरुद्ध वा धर्म विरुद्ध अति निश्चकर्म करे उन्हेंकों सक्कनोंकी पंक्तिसें ब-हार ही गिनने चाहिये. गुण दोष, जानालाज, कृत्या

कृत्य, उचितानुचित, ऋक्षयाऋक्षयः. पेयापेय वगैरा
 उचित विवेक विकल मनुष्यको पशुवत् समझना
 और उचित विवेक पूर्वक सदैव शुभकार्योंके से-
 वनमें उद्यमशीले मनुष्यों, एक अमूढ्य हीरेके स-
 मानही जानना. ऐसे जनोंका जन्मत्री सार्थक है.

३१ लोकापवाद प्रवर्तन हो वैसा नहि वर्तना.

जिस कार्यमें लोगोमें लघुता होय वैसा कार्य
 बिना सोचे-विचारे (अघटित कार्य) करना नहि
 जिस्में धर्मकों लांछन लगे—धर्मकी हीलना—निंदा
 होय शासनकी लघुता होय तैसा कार्य ऋवञ्जीरु ज-
 नकों प्राणांत तकञ्जी नहि करना चाहिये पूर्व महान्
 पुरुषोंके सद्वर्तनकी तर्फ लक्ष रखकर जिस प्रका-
 रमें अपनी या दूसरेकी—यावत् जिनशासनकी उन्न-
 ति होय तिस प्रकारमें विवेकमें वर्तना, ' लोग विरुद्ध
 चान्द्र ' यह सूत्रवाक्य कदापि झूल नहि जाना, जि-
 स्स सब सुख साधनेका शुभ मनोरथ कवीञ्जी फ-
 लिञ्जुत होय तैसे समालकर चलना सोही सर्वोत्तमहै.

३५ साहसीकपना कवीजी त्यागदेना नहि

आपत्तिके समय धैर्य, संपत्तिके समय द्रुमा, सजाकी श्रद्धा सत्य वार्ता निर्जय होकर कहनी, शरणागतका सब प्रकारसे शक्ति मुजब सरक्षण करना और स्वार्थजोग च्छाय इतना नुकसान होजाता हो तथापि श्रद्धा इन्साफ देना इत्यादि सद्गुण सत्ववंत सज्जनोमें स्वाज्ञाविकही होते है और ऐसे ही उत्तम जन धर्मके सत्य-सच्चे अधिकारी है तैसे विवेकी हसही सब मलीनता रहित निर्मल पद्म जजकर धर्म मार्ग दीपानेके वास्ते समर्थ होते है वैसे सत्य पुरुषोकोही अनतानत धन्यवाद है जो सच्चा पुरुषार्थ स्फुरायके अपना पुरुष नाम सार्थक करते है, तिनकीही उज्वल कीर्ति होती है, या निर्मल यशजी तिनकाही दिगतमे फैलता है जो महाशय अचल होकर ऐसी उत्तम मर्यादा सदैव पालते है वो प्रसन्नतासे पवित्र नीतिको अनुसरके अत्र अक्षय कीर्ति स्थापित कर, परत्र अवश्य सद्गति गामी होते है तैसे साहसीक शिरोमणिकाही जन्म

सार्थक है. तैसा उत्तम सात्विक साहसीक सिवा स्व जन्म निष्फल है. सच्चे सर्वज्ञ पुत्र उत्तम प्रकारकी शुद्ध साहसीक वृत्ति सहितही होते है. वो लस्कों आश्रितोंके आधाररूप है. तिनकों सिंह किशोरकी तरह साहसीकता धारण करनीही धटित है. तिनकी आवादीके उपर लस्को मनुष्योंके जिविष्यका आधार है. समजकर सुखसें निर्वहन हो सके तैसी महाव्रत आचरनेरूप—महा प्रतिज्ञा करके तिनका अखंरु निर्वाह करना वोही उत्तम साहसीकता है. वोही महान् प्रतिज्ञाका स्वच्छंद आचरणोंसें जंग करनेके समान एकज्जी दूसरी कायरता है ही नहि. यह दुःख दावानलसें तैसे प्रतिज्ञात्रष्टकी मुक्ति हो सकती नहि, ऐसा समजकर—‘तेल पात्रधर’ या राधावेध साधनेवालाकी’ तरह अप्रमत्त होकर सर्वज्ञ प्ररुपित तत्त्वरहस्य प्राप्त करके अंगीकार कीइ इइ महा प्रतिज्ञाकों अखंरु पालन करे, वो पूर्ण प्रतिज्ञावंत होके अपना और दुसरेका निस्तार करनेमें समर्थ होता है. वोही सच्चे साहसीक गिनाये जाते है; वास्ते स्वपरकों रूबानेवाली कायरता ठोरकर

हर एक मुमुक्षुको उत्तम साहसीकता धारण करनी ही श्रेष्ठ है ऐसा करनेसे सब मलीनता दूर होकर स्व पर हितद्वारा शासनोन्नति होने पावे. श्रद्धो ! कब प्राणी कायरता छोड़कर उत्तम साहसीकता आदरेंगे और उस द्वारा स्व परकी उन्नति साधकर कब परमानन्द पद प्राप्त करेंगे ! ! तथास्तु

३३ आपत्ति वरुत्तनी हिम्मत रखकर रहना.

कष्टके समयनी नाहिम्मत होना नहि जो महाशय धैर्य धारण करके सकटके सामने श्रमजाते है श्रमार्थी जो वरुत्त प्राप्त होनेपरनी उत्तम मर्यादा उल्लघते नहि, मगर उनटे उत्तम नीतिके धोरणको अग्नयन करके रदेते है, तिन्दको आपत्तिनी सपत्तिरूप होती है शत्रुनी वश होता है जो धर्मराजा श्री मुवाफिक अक्षय कीर्ति स्थापन करके श्रेष्ठ गति साधन करते है, परतु जो मनुष्य जैसे वरुत्तमें हिम्मत धारकर अपनी मर्यादा उल्लघन करके श्रमार्थ सेवनकर मलीनताका पोषण करता है, जो इस ज-

गत्मेंत्री निंदापात्र हो पापसें लिप्त हो परत्रनी अति दुःखपात्र होता है.

३४ प्राणांत तकत्री सन्मार्गका त्याग करना नहि.

ज्यों ज्यों विवेकी सज्जनोंकों कष्ट पमता है त्यों त्यों सुवर्ण, चंदन और उस (गन्ने)की तरह उत्तम वर्ण, उत्तम सुगंधि और उत्तम रस अर्पण करते है; परंतु तिन्होंकी प्रकृति विकृति होकर लोकापवादके पात्र नहि होती है. ऐसी कठिन करणी करके उत्तम यश उपार्जन कर वो अंतमें सद्गतिगामी होते है.

३५ वैज्जव क्षय होजानेपरत्री यथोचित दान करना.

चंचल लक्ष्मी अपनी आदत सार्थक करनेकों कदाचित् सटक जाय तोत्री दानव्यसनी जन थोमे-मेंसेत्री थोमा देनेका शुभ्र अभ्यास बोर देवे नहि. तैसे शुभ्र अभ्यासके योगसें क्वचित् महान् लाज संपादन होता है. यावत् लक्ष्मीत्री तिनके पुन्यसें

खींचाइ हुइ स्वयमेव आ मिलती है; परंतु खरुकी धारापर चलने जैसा यह कठीन व्रत साहसीक पुरुषही सेवन कर सकता है

३६ अत्यंत राग-स्नेह करना नहि

स्वार्थनिष्ठ सबधी जनके साथ राग करनाही मुनासिब नहि है जिस्के सयोगसे राग धारण कर सुख मानता है तिसकेही वियोगसे डु खन्नी आपही पाता है इतनाही नहि लेकीन सबधी जनकी स्वार्थनिष्ठता समझ जानेपरन्ती डु ख होता है वास्ते ज्ञानी अनुभवी पुरुषोके प्रमाणिक लेखोमें प्रतीति रखकर वा साक्षात् अनुभव-परीक्षा करके तैसा स्वार्थनिष्ठ जगत्में रागही करना लायक नहि है तिसमेंन्ती बहोत मर्यादा बहारका राग-स्नेह करना सो तो प्रकट अविवेकही है क्योंकि ऐसा करनेसे अधकी माफिक कुठ गुण दोष देखकर निश्चय नहि कर सकता है यु करतेन्ती राग करनेकी चाहना हो तो सत सुसाधुजनोंके साथही राग करो कि जिस्से कुत्सित राग विपका नाश कर आत्माको निर्विप्रता

प्राप्त होय. अन्यथा राग-रंगसें अपना स्फाटिक समान निर्मल स्वभाव ठोकर परवस्तुमें बंधन कर जीव अत्र परत्र दुःखकाही ज्ञोक्ता होता है. रागकी तरह घेषनी दुःखदाइही है.

३७ वल्लभजनपरत्री बार बार
गुस्सा नहि करना.

क्रोधसें प्रीतिकी हानि होती है, क्रोधसें वल्लभजनपरत्री अप्रिय हो पड़ता है, क्रोध वशवर्ती जीव कृत्याकृत्यका विवेक झूलकर अकृत्य करनेको प्रवर्त्तता है, वास्ते सुखार्थिजनोने कषायवश होकर असज्यता आदरके कबीत्री उचित नीतिका उल्लंघन कर स्व परको दुःखसागरमें मूबाना नहि.

३८ क्लेश बढाना नहि.

कलह वो केवल दुःखकाही मूल है. जिस मकानमें हमेशां कलह होता है तिस मकानमेंसें लक्ष्मीनी पलायन हो जाती है; वास्ते बन आवे जहांतक तो क्लेश होने देनाही नहि युं करते परत्री यदि क्लेश हो गया तो उन्को वढने न देते

खतम-शमन कर देना ठोटा बरकेके पास कृमा मगे ऐसी नीति है; मगर कच्ची ठोटा अपना गुमान ठोकर बरकेके अगामी कृमा न मगे तो बरना आप चला जाकर ठोटेकों खमावे जिस्से ठोटेकों शर-मींदा होकर अवश्य खमना और खमानाही परे क्लेशकों बंध करनेके लिये ' कृमापना ' खमतखा-मनेरुप जिनशासनकी नीति अत्युत्तम है जो महा-शय वो माफिक वर्त्तन रखता है तिनकों यहा और दूसरे लोकमेंनी सुखकी प्राप्ति होती है और जो इस्से विरुद्ध वर्त्तन चला रहे है तिनको सब लोकमें उ खही है

३ए कुसंग नहि करना

' जैसा सग हो वैसाही रंग लगता है ' यह न्यायसें नीचकी सोवत या वूरी आदतवाले लोगों-की सोवत करनेसें हीनपत आता है और उत्तमकी सोवतसें उत्तमता प्राप्त होती है कया देवनदी ग-गाका शुद्ध मीठा पानीजी खारे समुद्रमें मिलजाने-सें खारा नहि होता है ? अवश्य होता है । तैसेही

अन्य अपवित्र स्थलसें आया हुआ पानी गंगाका प-
वित्र जलमें मिलनेसें क्या गंगाजलके महात्म्यको
प्राप्त नहि करता है ? अतएव, वो गटरका जल हो
तो ज़ी गंग समागमसें गंगजलही हो जाता है !
ऐसा संगति महात्म्य समझकर श्याने मनुष्यों
सर्वथा कुसंग छोड़कर हर हमेशां सुसंगतिही
करनी योग्य है; क्योंकि—‘ हानि कुसंग सुसंगति
लाहु’—कुसंगतिमें हानि और सुसंगतिमें लाभ ही
मिलता है !’

४० बालकसें ज़ी हित वचन अंगीकार करना.

रत्नादि सार वस्तुओंकी तरह हितवचन चाहे
वहांसें अंगीकार करना यही विवेकवंतका लक्षण है.
ज्ञानी पुरुष गुणोंकीही मुख्यता मानते है. अव-
स्थासें लघु होने पर ज़ी सद्गुण गरीष्ठकों गुरु मा-
नते है, और वयोवृद्धकों गुणरिक्त होनेसें बालकवत्
मानते—गिनते है. ऐसा समझकर विवेकी सज्जन
गुणमात्र ग्रहण करनेको सदैव अज्ञिमुख रहेते है.

४१ अन्यायसें निवर्तन होना

समबुद्धि धारण कर राग रोप ठोकर सर्वत्र निष्पक्षपाततासें वर्तना यही सद्बुद्धि प्राप्त होनेका उत्तम फल है, ऐसा समझकर सत्यपक्ष स्वीकारना सोही परमार्थ है ऐसा वर्तन चलानेमेंही तत्त्वसें स्वरहित रहा है लोकापवादकाजी परिहार और शासनोन्नति इसी प्रकारसें हासिल कीं जाती है स्वल्पमें निररतासे सच्ची हिम्मत पूर्वक न्याय मार्ग अंगीकार किये विगर जीवका कवीजी मुक्तता होतीही नहि ऐसा समझकर श्याने जनकों सर्वथा न्यायकाही शरण लेना उचित है नाकमें दम आ जाने तकजी अनीतिका मार्ग स्वीकारना अयोग्य है

४२ वैज्रवके वख्त खुमारी नहि रखनी

पूर्व पुण्य योगसें सपत्ति प्राप्त हुई हो, तो सपत्तिके वख्त अहकारी न होते नम्र होना सोही अधिक शोभारूप है क्या आम्नादि वृद्ध जी फल प्राप्तिके वख्त विशेष नम्रता सेवन नहि करते हैं ? बेशक नम्र होते हैं ! वास्ते सपत्तिके वख्त नम्र हो-

नाही योग्य है. नही कि स्वहंड़ी बनकर मदमें खी चाकर तुंग मिजाजी होना. संपत्तिके समय मदांध होना यह वना विपत्तिकाही चिन्ह है !

४३ निर्धनताके वखत खेदजी न करना.

पूर्वकृत कर्मानुसार प्राणी मात्रकों सुख दुःख होय तैसे सम विषम संयोग मिल जाय तो जी तैसे समयमां कर्मका स्वरूप सोचकर दर्ष-उन्माद या दीनता न करते समझावसैंही रहेकर श्याना-सुशु जनोने शुभ विचार वृत्ति पोषण कर समर्थ धर्मनी-तिका प्रीतिसैं वा हिम्मतसैं सेवन करना योग्य है. पहिले अशुभ कर्म करनेके वखत प्राणी पीठे मुंह फिराकर देखते नहि है, जिस्के परिणामसैं अनंत दुःख वेदना सहन करते हुवे वो त्रास पाते है. अशुभ-निन्दकर्म करके अपने हाथोंसे मंग लीये हुवे दुःख उदय आनेसैं दीनता करनी सो केवल कायरता ही कही जाति है. दुःख पसंद परता न हो तो दुःखदायक निन्दकृत्योंसैं विचार कर-पश्चाताप कर उनसैं अलग हो जाना, जिस्सैं तैसे दुःख विपाक

जोगने पमेही नहि; परतु पूर्वके कीये हुवे दुष्कृत्यों के योगसें पमा हुवा दुःख सहन करतें दीन हो खेद-विपाद धरना वा विकल हो अविवेकतासें दूसरे दुष्कृत्य करना सो तो प्रकट दुःखका मार्ग है

४४ समझावसें रहेना.

जो महाशय सुख, दुःख, मान, अपमान, निदा, स्तुति, सघनता, निर्धनता, राजा, रंक, कंचन, पण्यर, तृण और मणि वा नारी और नागनकों अगामी कहे हुवे सद्बिचार मुजब वर्त्तन रखकर समान गिनते है और उसमे मोह प्राप्त नही होता है यावत् तिनकों केवल कर्मविकाररूप निमित्त जृत गिनकर मनमें विषमता न छयाते दर्य विपाद रहित सम बुद्धिमेंही देखते है, तैसे सद्बिचारवत विवेकवत-सद्गुण शिरोमणि जन समसुख अग्राह कर धर्म आराधनसे अग्रदय स्वकार्य सिद्ध करते है, परतु जो अज्ञानता के जोरसें-विवेक विफल मनसें विषम वर्त्तन करते है, दर्य खेद धरकें आप मतसें उलटे चलते है सो तो क्रोम उपायसें जी

आत्मकार्य साध नहीं सकते है.

४५ सेवकके गुण समझ कहेना.

सच्चे सेवककी प्रत्यक्ष प्रशंसा करनेसे कुछ हानि नहीं किन्तु लाभही है. उत्साहकी वृद्धिके साथ वो चुस्त स्वामि ज्ञात हो जाता है, और तैसे नहि करनेसे कदाचित् तिसकी श्रद्धा मंद होनेसे सेवा विमुखनी हो जाता है.

४६ पुत्रकी प्रत्यक्ष प्रशंसा नहि करनी.

पुत्र या शिष्य चाहे वैसा सद्गुणी हो, तदपि तिसकी समझ प्रशंसा नहि करनी सोही उत्तम नीति है. तिनमें विनयादि उत्तम गुण बढानेका वो रस्ता है. बाल्यावस्थामें अहो संस्कार प्राप्त हो ऐसी फिकर रखनी वे माता पिता और गुरुकी फर्ज है. मगर गुण प्राप्त हुवे बिना मिथ्या प्रशंसासे अज्ञिमानमें आजानेसे कदाचित् तिनका जन्म बिगरता है. ऐसा समझकर तिनकी परिपक्व स्थिति होजाने तक विचार विवेकसे वर्तना, जिसे तैसा सद्विवेक शीखकर पुत्र, पुत्री, शिष्य वा शिष्या

अपना जन्म सुखपूर्वक सुधार सकता है पुत्रादि समस्त माता पितादिकोंकी अपशब्दादि अविवेक यत्नसे त्याग देना

४७ स्त्रीकी तो प्रत्यक्ष वा परोक्ष नी प्रशंसा करनीही नहि

स्त्रीका स्वभाव तुच्छ होनेसे अपूर्णता बताये विगर नहि रहेती, वास्ते चाहे वैसी गुणवंती स्त्री हो तोनी मनमेही समझ रहेना स्त्रीकोंनी पति तर्फ विनीत शिष्यकी माफिक विशेष नम्र होनेकी आवश्यकता है अपना पतिव्रत तबही यथाविधि समाप्ता जाता है पतिकोनी स्त्रीकी तर्फ उचित मृदुता अवश्य रखनी चाहिये ऐसे एक दूसरेकी अनुकूलतासे गृह्यत्रके साथ धर्मयंत्रकी श्रेणी तरह चल सकता है तिस विगर दोनु यत्र वार वार विगरे या रुकजाते है अपशब्दादि अपमान त्यागकर स्त्रीका अपनी तरह श्रेय चाहकर वर्तना स्वदारा सतोपि पतिकी तरह समझदार स्त्रीकोंनी अपना पतिव्रत अवश्य पालन करना जैसे स्वश्रेयपूर्वक

स्व संततिज्ञी सुधारने पावे तैसे स्त्री ज्ञर्त्तार दोनुने संप संतोष पूर्वक सद्दर्शन सेवनमें सदैव तत्पर रहेना चाहिये. जैसे आगेके वखतमें अपना पवित्र शील-जूपणसें जूषित बहोतसी सती शिरोमणियोंने अपना नाम अपने अद्भुत चरित्रसें प्रसिद्ध किया है, तैसें अबीज्ञी सूविवेकी ज्ञाइ और ज्ञगिनीये पावन शील रत्न धारनकर सुशीलता योगसें ज्ञाग्यशाली होनाही योग्य है.

४७ प्रिय वचन बोलना.

दुसरे मनुष्योंको प्रिय लागे ऐसा सत्य और हितकर वचन बोलना. प्रसंगोपात विचारके कहा हुआ हितमित वचन सामने वालेको प्रिय होप्यता है. बिना विचारा, औसर बिगरका, कर्णकटुक ज्ञापण कर्त्ती सच्चा हो तोज्ञी अप्रिय होता है, और मीठा, गर्व रहित, विवेकपूर्वक विचारके समयोचित बोलाहुवा वचन बहोत प्रिय और उपयोगी होप्यता है. मगर नुस्सें विपरीत बोलना अहितकारी होता है. जो लोकप्रिय होनेको चाहते हो तो उक्त

विवेक समालोकें धर्मका बाध न आवे तैसा निपुण ज्ञापण करना शीखो. तैसा समयोचित विनय वचन वशीकरण समान समझना कदाज्ञी है कि ' एक बोलवो न शीख्यो सब शीख्यो गया घूरमें ! '

४ए विनय मेवन करना चाहिये

नम्रता, कोमलता, मृदुता वगैरे पर्यायवाची शब्द है सो सब विनयकेही है विनय सब गुणोंका वद्र्पार्थ प्रयोग है. विनयसे शत्रुञ्जी वश होजाता है विवेकसे गुणिजनोंका कीयाहुवा विनय श्रेष्ठ फल देता है और विनय विगरकी विद्याञ्जी फलीञ्जत नहि होती है.

५० दान देना

लक्ष्मीवत होकर सुपात्रादिकों विवेकसे दान देना सोही लक्ष्मीवतकी शोभा वा सार्थकता है विवेकपूर्वक दान देनेवालेकी लक्ष्मीका व्यय कीये हुवेञ्जी कुवेके पानीकी तरह निरतर पुण्यरूप आम-दनीस बढती होती जाती है विवेक रहित पनेसे व्यसनादिमें उदादेन वालेकी लक्ष्मीका तत्वसे वृद्धि

विनाही तुरत अंत आजाता है. सूम-कंजुसकी ल-
दमी कोइ ज्ञाग्यवान् नरही चुक्तता है-व्यय करके
लाज प्राप्त करता है; परंतु ममण शैठकी तरह ति-
नसें एक दमनीजी शुज्ज मार्गमें खर्ची नहि जाति
और न वो विचारा तिसकों उपजोगमेंजी लेसकता;
पूर्वजन्ममें धर्मकार्यकी अंदर गरुवरु मालनेका यह
कूल समऊकर दानांतराय नहि करना.

५१ दूसरेके गुणका ग्रहण करना,

आप सद्गुणालंकृत हो तदपि संत साधु जन
दूसरेका सद्गुण देखकर मनमां प्रमुदित होते है.
तोजी सज्जनोंकी अंदरके सद्गुणोंको देख-
कर असहनताके लिये दुर्जन उलटे दिलमें दुःख
पाते है-दिलगीर होते है और अंतमें दुधकी अंदर
जंतु हुंठने मुजब तैसे सद्गुणशाली सज्जनोमेंजी
मिथ्या दोपारोपण करते है. और जूठे दूषन लगा-
कर महा मलीन अध्वसायसें बावले कुत्तेकीतरह
बुरे हालसें मृत्यु पाकर दुर्गतिमें जाते है. अमृतकी
अंदर विष बुद्धि जैसे सद्गुणोमें औगुनपनका मिथ्या

आरोप कबीली हितकारी नहि है ऐसा समझकर सुझ जनको गुणही ग्रहण करना और सदगुणकी प्रशंसा करनेकी अवश्य आदत रखनी

५२ औसरपर बोलना.

उचित औसरकी प्राप्ति बिगर बोलनाही नहि उचित औसर प्राप्त हो तेजी प्रसंग-मोका समालकर प्रसंगानुयायी थोडा और मीठा ज्ञापण करना बिन औसर और हृदसें ज्यादा बोलनेसें लोक-प्रिय कार्य नहि होसकता मगर उलटा कार्य बिगरुता है ऐसा समझकर दरहमेशा सच्चा हितकारी और थोडा-मतलब जितनाही विवेकसें ज्ञापण करनेकी दरकार करना प्रसंगके सिवा बोलनेवाला बकवादी, दिवाने मनुष्यमें गिनाया जाता है, यह खूब यादीमें रखना ।

५३ खल-दुर्जनकोजी जनसमाजकी अदर योग्य सन्मान देना.

सिरो लिखित नीति वाक्य सज्जनोंको अत्यु-

पयोगी है. उक्त नीतिके उल्लंघनसें क्वचित् विशेष हानि होती है. दौर्जन्य दोषके प्रकोपसें खलजन स्था-
मनेवालेकों संतापित करनेमें बाकी नहि रखता है.

५४ स्व पर विशेषतासें जानना.

हिताहित, कृत्याकृत्य वा बलाबलका विवेक-
पूर्वक स्वशक्ति देशकाल मानादि लक्षमें रखकर उ-
चित प्रवृत्ति करनेवालेकों हित अन्यथा अहित हो-
नेका संज्ञव है, वास्ते सहसा-बिनशोचे काम नहि
करनेकी आदत रख कदम दर कदम विवेकसें वर्तने-
की जरूरत है. सद्विवेकधारी (परोक्षापूर्वक प्रवृत्ति
करनेवाले)का सकलार्थ सिद्ध होता है.

५५ मंत्र तंत्र नहि करना.

कामन, टोंना, वशीकरणादि करना करानो ये
सुकुलीन जनका नूषण नहि है. वास्ते बने जहांतक
तिस वातसें दूर रहेना. और परका मंत्रजेद करना
नहि-कीसीका जेद कीसीकों कहेना नहि. और गु-
फ्त वात जहां चलती हो वहां खमा रहेना नहि.

५६ दूसरे-पीरायेके घर अकेला नहि जाना

यह शिष्ट नीति अनुसरनेमे अनेक फायदे है इस्से शीलव्रतका सरक्षण होता है, सिरपर जूठा कलक नहि चरता है, यावत् मर्यादाशील गिनाकर लोगोमे अच्चा विश्वासपात्र होता है

५७ कीइ हुड प्रतीज्ञा पालन करनी

अबल तो प्रतिज्ञा करनेकी वरुतही पूर्ण विचार कर अपनेसे अबलसे प्राखिरतक निज्ञाव होसके वैसीही योग्य (वनसके वैसी) प्रतिज्ञा करनी चाहिये और कच्ची उत्तम जनने प्रतिज्ञा करली तो योग्य प्रतिज्ञाका प्रयत्नपूर्वक पालन करना—नाकमे दम आजानेतकच्ची खन्ति नहि करनी विचार करके समझपूर्वक कीइ हुड लायक प्रतिज्ञा सोही सत्य और शुद्ध प्रतिज्ञा गिनीजाति है तैसी सत्य और शुद्ध प्रतिज्ञासे ब्रष्ट हुए मनुष्य अपनी प्रतिष्ठाको खोकर अपवादके पात्र होता है अविवेक न होने पावे ऐसी हरदम फिकर जरूर रखनी योग्य

प्रसंग सहजहीमें आजाता है. परनिंदाके बने पापसें, गर्व-गुमान करनेवालेका आत्मा लिप्त होकर मलीन होता है. जिसें मिलेहुवे गुणोंकीजी हानि होती है, तो नये गुणोंकी प्राप्तिकेलिये तो कहनाही क्या ? (जहां गांठकी मुंजीजी गुमजाती है तो नया लाज्र होनेकी आशाही कहांसैं होय !) ऐसा समजकर सुझ जन अपने सुखसें अपनी बमाइ वा दूसरेकी लघुता करतेही नहि.

६१ मनमेंजी हर्ष नहि ल्यावा.

‘ बहु रत्ना वसुंधरा ’ पृथिवीमें बहोतसें रत्न पमे है, ऐसा समजकर आपजी शिष्ट नीति विचारके आप तैसी उत्तम पंक्तिके अधिकारी होनेके लिये प्रयत्न करना. जहांतक संपूर्णता आजावे वहांतक सब्जीतिका दृढालंबन कीये करना डुरस्त है. यदि किंचित्जी मंद परकर मनकों बूट्टी दी तो फिर खराबी तैसीही होती है. अल्प गुण प्राप्तिमेंही मनकों दिमागदाग बनानेसें गुणकी वृद्धि नहि होती है. बहोतही गुणोंकी प्राप्ति होनेपरजी जो महाशय

गर्व रहित प्रसन्न चित्तसे अपना कर्तव्य कीया करते है वो अंतमें अवश्य अनंत गुणगणालंकृत होकर मोक्षपदा प्राप्त करते है

६५ पहिले सुगम, सरल कार्य शुरु करना.

एकदम आकाशको वगलगिरी करने जैसा न करते अपनी गुजाश-ताकात याद कर धीरे धीरे कार्य लाइनपर ल्याना, सोही इयानधनका काम है. एकदम बिगर सोचे तिरपर बन्ना काम उठा लेकर फिर ठोमदेनेका वरुत आजाय और उलटा उठोरु-वापन-वेवकूफी सरदारी लेनी पने उस्तें तो सम-तासे काम लेना सोही सबसे बहेतर है

६३ पीठे बन्ना कार्य करना.

कार्यका स्वरुप समजकर समतासे वो शुरु किये बाद चित्त उत्साहादि शुद्ध सामग्री योगसे युक्त कार्यकी सिद्धिके लिये पूरुत प्रयत्न करना ऐसी शुद्ध नीतिमें कार्य करनेमें अध्यवसायकी विशुद्धिसे उत्तम लाभ प्राप्त होता है

६४ (परंतु) उत्कर्ष नहि करना.

शुभ कार्य समतासें शुरु करकें तिनकी नि-
विघ्नतासें समाप्ति होने बादनी अजिमान या ब-
नाइ जैसा कुञ्चनी करता नहि. मनमें ऐसी श्रद्धा-
समझ द्यार्के कोइनी कार्य काइ, स्वज्ञाव, नियति
पूर्व कर्म और पुरुषार्थ ये पांचों कारण प्राप्त हुवे
बिगर होताही नहि, तो वो पांचों कारण मिलनेसें
कार्य हुवा तिसमें गर्व काहेका करना चाहिये ? क्यों
कि कार्य तो वो कारणोंने कीया है. वास्ते गर्व ठोरु
कार्य सिद्ध होनेसें श्रद्धा-दृढतादि विवेकसें नम्रताही
धारण करनी डुरस्त है. वैसे सुनम्र विवेकी जन
जगतके अंदर अनेक उपयोगी शुभ कार्य कर
सकते है.

६५ परमात्माका ध्यान करना.

बाह्यात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा ऐसे आ-
त्माके तीन प्रकार है. शरीर कुटुंबादि बाह्य वस्तु-
ओमें व्याकुलतावैत होरहा हुवा बाह्यआत्मा कहा
जाता है. अंतरके नीतर विवेक जागृत होनेसें जि-

स्कों गुण—बोध कृत्याकृत्य, लाजालाजका ज्ञान—
 शुद्धि हुई हो, स्व परकी समझ परु गई हो, ज्ञानादि
 गुणमय आत्मा सोही मे हु और ज्ञानादि उत्तम गुण
 संपत्तिही मेरे सिवाय शरीर, कुटुंब, धन, धान्यादि
 सब पुद्गलिक वस्तुओं है ऐसा समझनेमें आया हो
 वो अतरात्मा कहाजाता है और जिसने सपूर्ण वि-
 वेकसें मोहादि कुल्ल अंतरंग शत्रुओंका सर्वथा उच्छेद
 करके विमल केवल ज्ञानादि अनंत आत्मसंपत्ति
 हाथ कीइ हो सो परमात्मा कहेजाते हे वहिरात्मा,
 परमात्माका ध्यान करवा नालायक है और अतरा-
 त्मा लायक है अतरात्मा, परमात्माका पुष्टालवनसे
 दृढ श्रद्धा—विवेक प्राप्तकर आपही परमात्मपद प्राप्त
 करता है वास्ते मोह माया ठोरुकर सुविवेकसें अंत-
 रआत्मापन आदर आत्मार्थी जनोने परमात्माका ध्या-
 नका अधिकार—योग्यता प्राप्त कर निश्चय चित्तसें प-
 रमात्माका पद प्राप्त करनेको प्रयत्न—सेवन करना
 योग्य है. जन्म, जरा और मृत्युरूप अनंत दु ख-उ-
 षाधि मुक्त सर्वज्ञ परमात्मा होवे है तिनका तन्मय
 ध्यान योगसे कीट अमर न्यायसें अंतर आत्मा पर-

मात्म पद पाता है. अनंत ज्ञानादि अखंड सहज समृद्धि पाकर परमानंद सुखमें मग्न हो रहता है. तैसे परमात्माकों अक्षय सुखार्थे आत्मारथी जनोकों हमेशां शरण हो ? तैसे परमात्माकी ज्ञक्तिरूप कल्पवल्ली ज्ञव्य प्राणियोंके ज्ञव दुःख दूर कर मनेवा पूर्ण करो ! यावत् ज्ञव्य चकोर शुक्ल ध्यान पाकर ज्ञव-ज्ञवकी ब्रमणा जागकर संपूर्ण निरुपाधि मोक्षसुख स्वाधीन कर अक्षय समाधिमें लीन हो !!

६६ दूसरेकों आत्माके समान जानना.

समस्त जीवोंमें जीवत्व समान है, ऐसा सम-जकर सबकों अपने जैसा गिनना. द्वैतज्ञाव ठोकर समता सेवन कर किसी जीवकों दुःख न हो वैसे यतनासें वर्तन चलाना. चीटीसें हाथी—सब जीवित सुख चाहता है. राजा, रंक, सुखी, दुःखी, रोगी, निरोगी, पंडित मूर्ख सब निर्विशेष—समान रीतसें सुखको अर्थी है. प्रमाद प्रवर्तन या स्वहृंद वर्तनसें कोइ जीवकों सुखमें अंतराय करनेसें वो प्रमादी या स्वहृंदी प्राणी बाधक कर्म बांधता है. जिस्का कटुक

फल तिनको अशुभ कर्मके उदय समय अवश्य स-
दन करना पम्ना है, वास्ते शास्त्रकार कहते है कि-
“ बंध समय चित्त चेतिये शो उदये सताप ”

इत्यादि बोध वचनोंको लक्ष्मि रखकर सुखा-
र्थी जनोने सर्वत्र ममता रखकर रहेना योग्य है मैत्री,
प्रमोद, करुणा और मध्यस्थतावकी प्राप्तिही ऐसेही
होसकती है जहातक ये मैत्री वगैरा ज्ञाना चतु-
ष्टयका प्राप्तिव-उदय हुवा नहि वहातक शिवमप-
दा वहोतही दूर समझनी

इउ राग द्वेष करना नहि.

काम, स्नेह, अज्ञिप्यग वगैरा रागके पर्याय श-
ब्द है, और द्वेष, मत्सर, इर्ष्या, असूया निन्दादि
रोषके पर्याय है स्फटिक रत्न समान निर्मल आ-
त्मसत्ताको राग द्वेषादि दोषे महानुपाधिरुप होने-
सँ विवेकवत जनोनं यत्नसे परिहरने योग्य है ज-
हातक महा उपाधिरुप ये रागद्वेषादि दोष दूर होवे
नहि वहातक कवीज्ञी आत्माका शुभ स्वरुप प्रकट
होसकता नहि वो रागादि कलक सर्वथा टल-हट

गया कि तुरतही आत्मा परमात्मा पद पाता है. वास्ते परमात्मपदके कामीजनोनें शत्रुभूत राग द्वेषादि कलंक सर्वथा दूर करनेकों दृढ प्रयत्न करना जरूरका है. यतः—

“ राग द्वेष परिणामयुत, मनहि अनंत संसार, तेहिज रागादिक रहित, जानी परमपद सार. ”

(समाधिशतक.)

तथा ए कर्मकलंक दूर करनेके वास्ते संक्षेपसें बालजीवोंके हितार्थ अन्यत्र भी कहा है किः—

“ शुद्ध उपयोगने समता धारी, ज्ञान ध्यान मनोहारी; कर्म कलंककों दूर निवारी, जीववरे सिवनारी, आप स्वज्ञावमेंरे अवधू सदा मगनमें रहेना. ”

इत्यादि रहस्य ज्ञानके वचनोंको मोक्षाधीं जीवोंकों परम आदर करना योग्य है, जिस्सें सब संसार उपाधीसें सब तरहसें मुक्त होकर पर-

मयैद त्वरासै प्राप्त कर शके, सर्वज्ञ ज्ञापित सङ्ग-
देशका येही सारतत्व है ज्यु बने त्यु चूपसै राग
द्वेष मल सर्वथा दूर कर निर्मल हो जाना राग द्वेष
मल सर्वथा दूर हो जानेसे आत्माको शुद्ध वीतराग
दशा प्राप्त होती है तैसी शुद्ध वीतराग दशा सोही
परमात्मा अवस्था है वो हरएक मोक्षार्थी सज्जनोंको
राग द्वेषादि मलका सर्वथा परिहार करके—सद्विवेक
बलसै प्राप्त करनी ही योग्य है उक्त सर्वज्ञ—उप-
देश रहस्यों समझकर जो महाजाग्य, रुचि
प्रीतिसै स्वहृदयमें धोरेंगे वो सुविवेकी सज्जनकी स-
मीपमें शिवसुख लक्ष्मी स्वैच्छासै आ क्रीडा करेगी

श्री सर्वज्ञ प्रणीत स्यादादशैलीको अनुसरके
पूर्वाचार्य प्रसादिकृत प्रकरणादि ग्रंथोंके आधारसै
आत्मार्थी ज्ञव्योके हितार्थ, जो कुछ स्वल्प स्वमति
अनुसारसै यद्वा कथन करनेमें आया है, उसमें मति
मंदतादि दोषोंसै उत्सृज—विरुद्ध ज्ञापण हुवा होवे
वो सहृदय—हृदय सुधारकर जिस प्रकारसै जयवंता
जैनशासनकी शोभा बढे, जैसे अनादि अविवेक
दूर हो जाय, और सद्विवेक जागत होवे, जैसे ५

रंत दुःखदायी स्वच्छंद वर्तन गोरुकर संपूर्ण सुख-
 दायी श्री सर्वज्ञ कथित सत्रीतिका सद्भावसें सेवन
 होवे, जैसें सम्यक् ज्ञान प्रकाससें व्यवहार शुद्ध
 होवे, जैसें लोकविरुद्ध त्यागसें शुद्ध देव, गुरु और
 धर्मका अन्ते प्रकारसें आराधन कर, अंतमें अक्षय
 सुख संप्राप्त होवे तैसें वर्तन रखनेको सज्जनोंको
 मेरी अभ्यर्थना है. नाकमें दम आजाने तक स्त्री
 प्रार्थना जंग नहि करनेकी उत्तम नीतिका अवलंबन
 करके सज्जन महाशय सत्यका प्रथन करना नही
 चुकेंगे. उत्तम हंसके समान सज्जन जन गुणमात्र
 कोही ग्रहण कर औगुण-दोष मात्रका त्याग करके
 जैसें स्व परकी तत्वसें उन्नति साध सके वैसें ध्यान
 देके वर्तनेको अवश्य विवेक धरेंगे. आशा है कि, प
 रोपकार परायण सज्जन वर्ग सत्य नीतिकी उन्मी
 नीव झाल उसपर अति उमदा धर्म इमारत बांधकर
 उसमें कुटुंब सहित नित्य विलास करेंगे. और सम्य
 ग ज्ञान, दर्शन चारित्रिका यथाशक्तिसें आराधन कर
 अंतमें अविनाशी पद पाकर जन्म मरणादि दुःखों-
 का सर्वथा नाश करेगा. और सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हो-

कर लोकालोकको हस्तामलकवत् देखेगा यावत् प-
रम सिद्धिदायक परमात्मपद प्राप्त कर पूर्णानंद चि-
डूप हो रहेगा इत्यलम्

प्रकरण पाचवा

‘ सामायकादि पङ् आवश्यक-तिन्के
पवित्र हेतुयुक्त ’

१ सामायिक, ७ चतुर्विंशत्या, ३ वदनक, ४
प्रतिक्रमण, ५ ज्ञानश्मग्ग, ६ श्रोर पञ्चस्क्राण यह उ
आवश्यक (अवश्य करने लायक) माधु, साध्वि,
आवक श्रोर श्राविष्ठाकी नित्यकरणी है जो हरएक
के पवित्र हेतु हृदयमें धारण कर उपयोग पुरक क-
र्मेमें श्रांति तो उत्त श्रध्यामके बलसे अमृत समान
स्वाद के के आत्माको ज्ञात अमृत रमलीन बनाकर
अनमे अमृत-मोक्ष पदको अवश्य दिलाते है

१ सामायिक साध्य (पाप) व्यापारका त्याग
कर मन वचन श्रां शरीरको सत्त (नियममें रग्य

कर) जघन्य (कममें कम) दो घनी और उत्कृष्ट (सर्वथा) जीवित पर्यंत समझाव—समताकों आदर ज्ञान ध्यानमें तल्लीन रहेना. सो पहिला सामायक आवश्यक कहाजाता है. उससे चारित्राचारकी—विशुद्धि होती है, अविरतिपन दूर होता है और लेश्या निर्मल होती है. गृहस्थ होवे तदपि अवकाश प्राप्त होनेसे (जितना वखत हाथ लगे उतने वखत तक) सामायक पौषधादिकका बार बार अज्यास करते हुवे समझावको सेवन करनेवाला साधु समान गिनाता है; वास्ते प्रमाद रहित अवकाश योगसे सामायकका सेवन करना

१ चतुर्विंशत्या. यह दूसरा आवश्यक २४ जिनोंका अति अद्भुत गुण कीर्तिरूप होनेसे जविक जीवोंको दर्शनाचार (समकित) की शुद्धिके लीये होता है—उससे समकित निर्मल होता है.

३ वंदनक. गुरु गुणसे युक्त ऐसे साक्षात् गुरु आचार्य महाराज वगैरा, और तैसे गुरुके वियोगसे तैसे गुणवंत गुरुकी स्थापनाके समकृद् द्वादशावर्त वंदना करते हुवे गुरुमहाराजके निर्मल ज्ञान

दर्शन और चारित्र्य गुणकी अनुमोदनाका अपूर्व लाभ पानेसे ज्ञानाचारादिकी शुद्धि होती है.

४ प्रतिक्रमण—अपनी मूल धर्म मर्यादासे पीठा आनेरूप, मूलगुण या उत्तरगुणसे लगे हुवे दुषणोंको आलोचकर—निवृत्तकर शुद्ध होनेके वास्ते अनुष्ठान विशेष प्रतिक्रमण चौथा आवश्यक है जैसे शरीरमें पंरु हुवे व्रणको डुरुस्त होनेको मल्लहम पट्टी कीजाति है, तैसें ग्रहण कीये हुवे व्रत नियमोंमें लगे हुवे अतिचारादि दूषण दूर करनेके वास्ते प्रतिक्रमण क्रिया करनेकी जरूर है जैसे निर्मल वस्त्रपर पंरु हुवे दाग—धब्बे उपायसे नीकालनेमें आते हैं, तैसें व्रतादिकके धब्बे दूर करनेको यह क्रिया है विधिवत् प्रतिक्रमण करनेको दरकारवाले जीवको वो वो आचारकी शुद्धि होती है अन्यथा होती नहि है

५ कान्तस्सग्ग—अतिचार आदिक दूषणकी बहुलतासें—या चाहिये वैसी परिणामकी शुद्धि—उपयोगकी खामीसें प्रतिक्रमण द्वारा जो शुद्धि नहि हो

सकती है वैसी मन दचन कायाके योगकों संवरकर परमात्माका एकाग्रतासें स्मरण करते सहजही शुद्धि हो सकती है.

६ पञ्चस्क्राण—समझकर पापका परिहार कर उत्तम अग्निग्रह यथाशक्ति आदरनेसें तपाचार, वीर्याचार वगैरा सब आचारकी शुद्धि होती है; वास्ते वो अवश्य अंगीकार करने लायक है. समता पूर्वक यथाशक्ति व्रत पञ्चस्क्राण अंगीकार करके जो महाशय उनकों अखंड आराधते है, वो सब संपत्ति—स्वर्गापवर्ग नी वश्य कर सकते है. ऐसे संक्षेप रुचिकों समझनेके लिये यत्किंचित् लेखसें उन आवश्यकोंका स्वरूप कहा उनके विशेष हेतु प्रयोजन गुरु गम्य जाणकर—अवधारकर आजकल बहुधा प्रवर्तन होते अविधि दोषकों दूरकर गतानुगतिकता मात्र ठोकरे, जीससें अवश्य स्वश्रेय सिद्ध कीया जावे, वैसी रुचि—प्रीति जक्तिसें उक्त आवश्यक क्रिया करनेके वास्ते आत्मार्थी जीवकों प्रतिदिन तत्पर रहेना. विधि बहोत मानसें, श्री जिनाज्ञा पूर्वक करनेमें आती नित्य करणीसें आगे पैदा हुवा ज्ञाव

इठ जाता नदि, इतनाही नदि, मगर अपूर्व ज्ञाव
(परिणाम) प्राप्त होनेमें आत्माको महान् लाभ मि-
लता है इत्यलम्

प्रकरण ठठा

श्री जैनपर्व-तिथियें

- कातिक शुक्ल १ श्री गातम केवलज्ञान कल्याणक.
 ,, ५ सोजाग्य-ज्ञान पचमी.
 ,, ७ चातुर्मासी अवाइकी शुरुवात.
 ,, १४ वर्षा चातुर्मासी और अवाइकी
 पूर्णाहुती
 ,, चातुर्मासी प्रतिक्रमण
 ,, १५ जारिठ और वारीसिद्ध १० क्रोम
 मुनियोंके साथ श्री सिठगिरिप
 सिठिपद पाये (श्री शत्रुजय
 तीर्थगाजकी यात्रा तिथि)
 अगहन शुक्ल ?? मोन एकादशी (१५० उद्याण-
 ककी तिथि

पूस कृष्ण १० पूस दशमी (श्री पार्श्वनाथजीका
जन्म क.)

११ श्री पार्श्वजिन दीक्षा कढ्याणक.

माघ कृष्ण १३ मेरुतेरस (श्री अष्टापदजीके उपर
श्री आदीश्वरजीका निर्वाण.)

फागुन शुक्ल ७ फागुन चातुर्मासी अठाइका प-
हिला दिन.

८ श्री सिद्धचलजीकी यात्राका दिन
(श्री आदीश्वरजी नसरोज पूर्व
निनाणु वार आकर समोसरे.)

१४ चातुर्मासी अठाइकी पूर्णाहुती-चौ-
मासी प्रतिक्रमण तिथि.

चेत कृष्ण ८ श्री ऋषभजिन दीक्षा कढ्याणक
वर्षितपका पहिला दिन, और श्री
केसरीयाजीमें (धूलेवेमें) महोत्सव.

चेत शुक्ल ७ आयंबिलकी नलीका पहिला दिन.

१५ " " पूर्णाहुतीका दिन.

" " श्री पुंनरीकगिरिकी यात्रा तिथि.
(उस दिन श्री पुंनरीक गणधर

(१४९)

पाच क्रोम मुनियोंके साथ सिद्धि
पद पाये)

वैशाख शुक्ल ३ अक्षय तृतीया श्री वर्षी तपको
पारणोका दिन (उस दिन श्री आ-
दिश्वरजीने वर्षी तपका पारणा
कीया)

अषाढ शुक्ल ७ चातुर्मासकी अष्टाशका पहिला दिन

” ” १४ चौमासी प्रतिक्रमण तिथि

ज्येष्ठ कृष्ण १२ अष्टाश्वर-पर्यूपण पर्वकी (पर्यूपण
अष्टाशकी) शुरुवात

” ” ०)) कल्पश्वर (कल्प सूत्रकी वाचना)
की प्र दि.

ज्येष्ठ शुक्ल १ श्री महावीरजीका जन्मोत्सव
(श्री कल्प सूत्रातर्गत)

” ” २ तैलाश्वर (अष्टम) संवत्सरी सबधी
तप शुरु करनेका दिन

” ” ४ संवत्सरी-वार्षिक पर्व (संवत्सरी
प्रतिक्रमणका दिन-श्री कालिका-
चार्यका आचारणासे)

" " ८ द्वली अष्टमी.
 कुंवार शुक्ल ७ आयंबिलकी उलीका पहिला दिन.
 " " १५ " " पूर्णाहुती.
 कातिक कृष्ण " श्री वीर प्रज्जुजीका निर्वाण कल्या-
 एक दीवालीका दिन.

ऐसे पर्वके दिनोंमें यथाशक्ति ठठ, अठम, उ-
 पवास, आयंबिल, नीवी, एकाशनादिक तप, जप,
 सामायक, पूजा, पौषध, प्रतिक्रमण वगैरा अवश्य
 कृत्य आदरणीय है.

प्रकरण सातमा.

रात्रि न्जोन त्याग.

ज्ञाविक गृहस्थोंकों रात्रिन्जोनका सर्वथा
 त्याग करनाही योग्य है. बनते तक तो रात्रिमें च-
 उविहार रखना. मगर ऐसा न बनसके तो तिविहार
 उविहार तो अवश्य रखना. अशन, पान, खादिम
 और स्वादिम ये चारों प्रकारके आहार हैं जिस्सें
 न्खकी शांति—तृप्ति होवे उस्कों अशन कहाजाता
 है, जिस्सें तृषाकी शांति होवे उस्कों पान कहा जा-

ता है, जिसे कितनेक अंशोंसे क्षुधादिकी शांति होवे ऐसे जूने हुवे धान्य फल केले वगैरे खाना उ-
 स्को खादिम कहा जाता है और शुठ, जीरा, अज
 मा वगैरे स्वादिष्ट वस्तुयोंका सेवन करना उस्को
 स्वादिम कहा जाता है यह चारो प्रकारके आहार-
 का त्याग (चौविहार) जो ज्ञान्यशाली जन करता
 है, उन्को दर महीने पंजाद उपवासका फल प्राप्त
 होता है मुख्य करके सूर्यास्त पहिले दो घन्टीसे
 सूर्योदयके पीठेकी दो घन्टी तक वो नियम (चौ-
 विहार) दृढतासे पालना योग्य है ऐसी वर्तनसे
 एक वर्षमें ठ महीनेके उपवासोका फल-लाभ ऐसे
 दृढव्रतधारीको सहजहीमा हासिल होता है इस्से
 प्रतिरोज सतोप गुणकी प्राप्ति होनपरन्ती असंख्य
 जीवोंको अन्नयदान साथ अपनाओ किमती जान
 का बहोतही वचाव होता है इस्से विपरीत वर्तने
 वाले स्वबुदी लोग असंतोपधारक अनेक जीवोका
 संहार करते हुवे कितनी बफे अपनाही प्रिय प्राण-
 कोन्ती जोखममें नाल देते है तास्ते स्वपरहित-चा-
 हनेवाले हर एक सदगृहस्थोंको रात्रिनोजनका अ-

वेश्य त्याग करनाही चाहियें.

मोक्ष मार्गकाही फक्त साधन करनेवाले साधु, यति, निर्ग्रन्थ, अणगारोंको तो वो हरहमेशां सर्वथा प्रकारसें वर्जीतही है. उनको तो प्राणका अंत आने तकजी रात्रिजोजन करना घटित नहि है. दिन होने परजी अंधेरेमें या सकमे (गटे मुंहवाले) वरतनमें जोजन करना वोजी वैसाही दोषित है. वास्ते दिनमें अन्ना उजाला जहां हो वहांही जीवोंकी यतना हो सके वैसे चोमे मुंहके वरतनमें (पात्रमें) ज्ञह्याज्ञहका विवेक पूर्वक मौनतासें (जूंगे मुंहसे वातचित न करते) ज्ञह्य (जोजन) में कोइजी सजीव या निर्जीव (जीवका) कलेवर न आ जाय वैसा स्थिर चित्त रखकर, आंखोंसें बराबर तपास करकें उपयोगसें ही हितमित (पश्य और प्रमाणो-पेत) जोजन अंगीकार करना. परंतु विषय लालसासें चाहे वैसी स्वादिष्ट वस्तु हो तो जी प्रमाणकी बहार—हदसें ज्यादे होवे उतनी ग्रहण नही करनी. और कुपश्य (शरीर प्रकृतिकों प्रतिकूल) जोजन जी कदापि करना नहि. इस तरह विवेकसें वर्तने

वाले शंखत स्वधर्म कर्म सुखसें साध सकते है ले-
किन इस्सें विपरीत वर्तने वालेके बहोत दफै बुरे
हाल होते हुवे नजर आते है वास्ते उक्त हितशिक्षा
हृदयमें धारण करके प्रमादकों ठोरु उक्त नीतिसें
चलनेकी दरकार करनी

प्रकरण आठवा

“पढा तो सही, मगर विचारशून्य रहा ।”

कोइजी शखसको जानपना प्राप्त हुवा तोजी
अविवेक ठारुकर सद्विवेक आदरता नहि-उन्मा-
गकों ठोरु सन्मार्ग ग्रहण करता नहि उसका ज्ञात-
पन गद्वेपर लदे हुवे चंदनके बोजे जैसा मिथ्या क्ले-
शरूपही समजना जैसें गद्वेकों चदन बोजा रूपही
है-कुञ्जरी शीतलताके लिये नहि तैसें वैसे अवि-
वेकी गढे जैसें जनोकोजी वो ज्ञान तिलकुल बोजा-
रूपही है-कुञ्जरी हितकारी नहि पवित्र जैन शा-
सनमें ऐसा आग्रह नहि है कि बहोत ज्ञात हुवा हो

उस्काही कल्याण होता है, मगर दूसरेका नहि होता है. परंतु इतना तो साफ फरमान है कि कम और ज्यादा पढकर विवेकपूर्वक विचार करके कार्य करे उस्का कल्याण होवे. पढकर विचारवंत हुवा उस्कोही कहाजाता है कि गुरुके मुखसे शास्त्र श्रवण करके या बांचकरके उस्का बरोबर—पूरापूरा निश्चय कर सुविवेक आदरके अहित मार्गका सर्वथा त्याग कर हितकारी मार्गकोही सेवन करनेमें आवे, उस्मे (हित सेवनमें) जिस्की उपेक्षा हो. वो पढा मगर विचारशून्यही रहा है, ऐसा मुकरीर समजना. दृष्टांत—जैसे विष मृत्यु देता है और अमृत जीलाता है ऐसा जानता है तोजी अमृतकी अवगणना कर विष नहण करे वो अवश्य मरणके शरणही होता है.

—(०)—

प्रकरण नवमा.

नवकार महामंत्र.

जो महामंत्रके फक्त नव पद और हर्फ ६० है. वो नवकार मात्रकाजी यदि सरहस्य सद्दिवेकसे

स्मरण करनेमें आवे तो तैसे जाविक सज्जन जन
उस्से अतुल फायदा—लाभ सपादन कर सकते है

उक्त नवकार मंत्र अरिहत, सिद्ध, आचार्य,
उपाध्याय और सब साधुरूप पंचपरमेष्ठिके नमस्का-
ररूप होनेसे सर्वोत्कृष्ट गिनाता है तीन जुवनमे
प्राधान्य परमेष्ठिके परम आदरपूर्वक प्रणामरूप न-
मस्कार मंत्र चौदा पूर्वका तत्व मानाजाता है साफ
दिलसे नवकार मंत्रका एक वरुत स्मरण करनेसे
५०० सागर प्रमाण पाप प्रलय होता है तो त्रिक-
रण (मन वचन और काया) की शुद्धिसे चार बार
उक्त महामंत्रका स्मरण करनेका श्रेष्ठ फलका तो
कहेनाही क्या ? उत्कृष्ट जावसे नव लाख नवकार
गिन्ने—जपनेसे जगजयवत जिनवर पद्मी पावे जैसे
अनेक अधिकार शास्त्रोमें नजर आते है वास्ने उक्त
महामंत्र दुनियामें श्रेष्ठ गिनाता हुवा (चितामनि-
रत्न वगैरा) समस्त पदार्थोंसेज्जी ज्यादे आदरसे
सेवन करने लायक है उक्त महामंत्रका स्मरण सु-
विवेकी जनोंको कृण कृण और पल पलमें करनाही

योग्य है. एक कृणमात्रज्ञी उनको ज्ञानजाना योग्य नहि है. पहिले पदसें काम, क्रोध और मोहादिक, महाशत्रुयोंका निकंदन करनेवाले अरिहंत, जगवान्-कों, दूसरे पदसें आठ कर्मके बंधनसें सर्वथा मुक्त हुवे सिद्ध जगवानकों, तीसरे पदसें पंचाचार पालने वाले प्रवीणतादि ३५ गुणालंकृत आचार्य महाराज-कों, चौथे पदसें अंग उपांगके अध्ययन अध्यापना-दिक ३५ गुणसें विज्ञूषित उपाध्यायकों और पांचवे पदसें षः व्रत (पांच महाव्रत और रात्रिज्ञोजन वि-रमण सहित) पालनेवाले, ष काय रक्षकादि ३७ गुणयुक्त साधु मुनिराजकों सम्यग् (त्रिकरण शु-द्धिसें) नमस्कार हो. ऐसे अगाहीके पांच पदोंका सामान्यतासें परमार्थ समजना. पीठाहीके चार प-दोंका परमार्थ समजनेसें ये महामंत्रका अचिंत्य प्र-ज्ञाव सहजमें समजाजावे उसलिये वो चारों पदों-का ज्ञावार्थ कहेनेकी जरूरत है. ज्ञावार्थ यह है कि ये आगे कहेहुवे पांचों पदोंसे करेहुवे (परमेष्ठीकों) नमस्कार समस्त पापोंका सर्वथा नाश करनेकों श-क्तिमान है, और सब प्रकारके मंगलमें पहिले मंग-

लरूप है वास्ते सब सुखार्थी जनोंको अवश्यावश्य आदरने योग्य है.

प्रकरण दशवा

उत्तम गुण ग्रहणता

इसके समान तत्वग्राही स्वज्ञावसें गुण प्राप्ति, और मुक्तर जैसे बुरे स्वज्ञावसें दोष प्राप्ति होती है, गुणगुणीके शुद्ध रागसें गुण-लाभ और दोष-हृष्ट-के अशुद्ध रागसें गुण हानि होती है तात्पर्य कि उत्तम गुण-गुणी प्रति शुद्ध प्रेमज्ञाव विगर कदापि कोडली आत्माकों उत्तम गुणोंकी प्राप्ति नहि हो स-क्ती. उत्तम गुण प्राप्त करनेके अधिकारी फक्त वोही है कि जो आप उत्तम गुणरागी हो उत्तम गुण ग्र-हण कीये करता है अनत गुणी अरिइतादिक पर-मात्माका और सम्यग् रत्नत्रयीके आराधक आचार्य प्रमुख पवित्र आत्मानुका अहर्निश स्मरण, दर्शन, पूजन, जक्ति बहोत मानादि करनेका प्रयोजन येही है कि अपनी आत्म परिणति जी शुद्ध अच्यभक्तके

बलसँ अंतमें तदाकार—तैसीही होवे, ये हेतुके लिये अपनी वृत्ति पूरेपूरी उत्तम गुण ग्रहण सन्मुख ही चाहियें, विमुख तो चाहियें ही नहि. अपन उक्त अनंत गुणवंत अरिहंतादिककी सन्मुखता किस प्रकारसँ ज्ञज लेनी चाहिये कि जिस्तें उनके अनंत गुणी आत्माका अपना आत्मा आवेहुव तसवीर देख शके. (१) अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत (स्व-ज्ञाव) रमण और अनंत वीर्यरूप अनंत आत्म (परमात्म) गुण प्राप्त-प्रकट करकेँ सब दोषोका दलन कर दैव निर्मित समवसरणमें विराजमान हो जिस-जिस प्रकारसँ दोष मात्रका दलन, और गुण मात्रका अमोघ मिलन होवे वो वो निर्दोष मोक्षमार्गका आपही सेवन करकेँ ज्ञव्य जीवोंके एकांत हितकी खातिर अमृत समान मीठी वाणिसे स्याद्वाद मार्गका निरुपण कथन कर अनेक ज्ञव्य सत्वोकोँ धर्म मार्गमें साक्षात् स्थापन करकेँ स्वतीर्थकर पद सार्थक करते है. ऐसी अनुपम अरिहंत देवकी परोपकार वृत्ति दिलमें धारण कर अपन ज्ञी अपना वीर्य स्फुरायमान्—फैलाके अरिहंत देवकी अमोघ आज्ञाका

यथास्थित आराधन करके स्व मनुष्य जवादिक दु-
र्लभ सामग्री सफल करनी योग्य है-

ऐसे स्वच्छंदता ठोकर यथाशक्ति अरिहंत प्रभु-
की अमूर्ख्य आज्ञाका आराधन करते करते क्रमसे
अज्ञातना बलसे आत्म परिणति शुद्ध-शुद्धतर होती
जाती है अतमें अज्ञेद बुद्धिमें अरिहंतकी उपासना
करते उपामरु (सेवक) आपही उपास्य (उपास-
ना करने योग्य) बनजाता है अर्थात् ' कीटभ्रमरी '
के न्यायवत् आपही अरिहंत रूपही होता है

(७) समस्त कर्मोंका सर्वथा क्षय करके उक्त
न्यायवत् सिद्ध हुवे सिद्ध जगवान्की उनके पवित्र
कदमानुसार चलनेसे-उनके उदार चरित्रोंको स-
म्यग् सेजनेसेही समस्त स्वकर्मका क्षय कर अनंत,
अक्षय, अव्यावाध अगुरु, लघु, अपुनर्जवरूप सहज
आत्म समाधि सुख संप्राप्त करके श्री सिद्धपदकी
उपासना करते करते सपूर्ण आराधना कर स्वकार्य
सिद्ध करते हे बात ज्ञी यही इरस्त है कि समर्थ
स्वामिकों पाकर (जेट कर) सेवक ज्ञी अपने स्वा-
मि समान स्वज्ञावकों आदर अपने स्वामिकी तु-

द्वयताकोंही पाता है, और सत्य प्रमाणिक समर्थ स्वामिजी वोही गिनाता है कि उदार आशयसे सेवारसिक सेवकों अपने समानही बना देवे. कोइ जी तरहका जेदजाव नहि रस्कै, और अजेद जावसें सिद्ध जगवंतकी जक्ति करने वाले जक्तजन इसी प्रकार सिद्ध स्वरूपकों निःशंसय प्राप्त करसकतेही है.

(३) निर्मल ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्यरूप पांचों—आचारमें प्रवीण और अन्य आत्माधिजनोंकोंजी उक्त उत्तम आचारमें प्रवर्तनेवाले है तदपि निस्पृहतादिक अनेक गुणयुक्त आचार्य महा-राजकी निर्मल सेवाका फल यही है कि अपनी अनादिकी कुचाल समजकर सर्वथा सुधारकर सुचाल—सदाचार सेवन करनेकों हमेशां कटिबन्ध होना.

(४) अर्थसें अनंत ज्ञानी—अरिहंत निरूपित और सूत्रसें गणधर गुंथित—रचित् द्वादशांगी अंतर्गत आचारांगजी प्रमुख ११ अंग और उववाइजी प्रमुख १२ उपांगके धारक होकर उक्त सूत्र अध्ययन करनेको समीप आते पृथर जैसे जन्म—अविनीत

शिष्योंको सूत्रधाराले नवपद्धव-सुविनीत और सु-
अधीत करनेको समर्थ उपाध्याय महाराजकी उत्तम
सेवा प्राप्त कर विनयादिक अनेक गुणगण धारण
करनेमें हरहमेशा उद्युक्त रहेना

(५) सद्विवेकसे समस्त सांसारिक उपाधि
ठारकर सम्यग् ज्ञान दर्शन और चारित्ररूप रत्नत्र-
यी आराधनेमें तत्पर और मोक्ष सुखार्थी ज्ञव्य ज-
नोको यथायोग्य चहिये वैसा धर्मोपदेशादिकसे सु-
सहाय देनेमें तत्पर सुसाधु संतकी सेवा पूर्व पुन्य
योगसे प्राप्त कर पापकारक पाचो प्रमादको परिहार
करके सुविवेकी सज्जन तत्व रहस्य पाके अवचक
(मन वचन और कायाके) योगसे अवचक क्रिय।
आराधकर अवचक-मोक्ष फल अवश्य मिलाना-
हाथ करना सच्चमुच मोक्षमार्गके साधनेवाले सुसा-
धु निर्ग्रन्थ महात्मनोंकी निर्दल सेवा-जक्ति करनेको
तत्पर जक्तजन होवे उनको साक्षात् कल्पवृक्ष स-
मान फलीज्जुत होते है एक दरिड़ी-निर्धन मनुष्य-
की उक्त साधुकी सच्ची सेवासे साधुताको पाकर च-
क्रवर्तिकोंकी पूजने योग्य होता है ऐसे-इस प्रकार

पांचों परमेश्वरीकी पवित्र जक्तिसँ सुविवेकी जन अ-
पने आत्माकों पवित्र कर उज्वल धर्म और शुक्ल
ध्यानके बलसँ पांचवी गति मोह-मुक्ति योग्य अ-
वश्य क्रीया करे, जिससँ अंतमें अपना पवित्रात्मा
पूर्णानंद परमात्म दशाकों साक्षात् प्राप्त कर
शाश्वत लोकाग्रमें स्थित मुक्तिधामकों अलंकृत
करे. इतिशम्.

प्रकरण ग्यारवा.

विविध विषय संग्रह.

१ जानने लायक बातें—षट्द्रव्य, चार निक्षेपे,
सप्तजंगी, आठ कर्म, नवतत्व और चार प्रमाण
ये बातें जैनी महाशयोंको खसूस करके जाननी
चाहियें.

२ दश दृष्टांतसँ मनुष्य जन्म पाना दुर्लभ है
उन्के नाम चुलग, पासा, धान्य, जुगार, रत्न, स्वप्न,
चक्र, कछुआ, धुंसर (बहेलके खंधेपर गाढा जोतनेके

वखत रक्का जाता है वो) धुंसरखीली, और परमाणु ये दश है

३ मकानके अदर उत्कृष्टतासे दश चड्वे—चंदनीये वाघनी चाहिये सो कौनसी ? पौषघशालामें कि जहा सामायक प्रतिक्रमणादि धर्मक्रिया होती हो वहा १, जोजन करनेको वैठे वहा ७, रसोइखानेमें चुलेपर ३ पनिहारेमें ४, सोनेकी जगामें ५, चक्कीके उपर ६, गाड़ा करनेकी जगह ७, उखल—खारुनेकी जगह ८ जिनमदिरमें ९ और एक फालतु हमेशा रखना चाहिये कि जहा जिस वखत जरूरत होवे वहा उन्का उपयोग क्रिया जावे १०

४ चार शरणके नाम—अरिहतजीका, सिद्ध म-हाराजजीका, सब साधुओंका और केवली प्ररुपित धर्मका ये चार है

५ आठ बातें दुर्लभ है उनके नाम—मोहनीय कर्मका क्षय करना १, जिब्दाकों कब्जे रखनी २, मनोयोगकों जीतना ३, युवावस्थामें शील पालना ४, कायर—रूपोककों साधुपना पालना ५ कृपणकों दातव्य बुद्धि प्राप्त होनी ६, अजिमानियों क्षमा—

सहनशीलता रहेनी उ और तरुणावस्थामें इंडियोकों वश्य करनी ँ. ये वाते बहोत मुश्केल है.

६ दयाके आठ बोल—जैसें मरपोककों शरणका आधार, पक्षीकों आकाशका आधार, तृषावंतकों पानीका आधार, कुधितकों ज्ञोजनका आधार, समुडमें डूबते हुवेकों पाटियेका आधार, चतुष्पद (ढोर पशु) कों स्थानकका आधार, रोगीकों औपधका आधार, जूलेहुवेका वाहन आधारहै, तैसे ज्ञव्य जीवकों दया धर्मका आधार जानना.

उ शीक्षाके आठ बोल—दया पाले वो दानेश्वरी, धर्माचार पाले वो ज्ञानी, पापोसें मरता रहे वो पंन्तित, पांचों इंडियोकों वश्य करलेवे वो शूवीर, सत्य वचन बोले वो सिंह समान, परोपकार करे वो धनवंत, कुलहणोका त्याग करे वो चतुर और निर्धनसें मित्रता निवाहै वो मित्र कहाजाता है.

७ श्रावककों सात धोतियें रखनी चाहिये सो कौनसी कौनसी ? सामायक प्रतिक्रमण वखत पहेन्नेकी १, देवपूजाके वखत पहेन्नेकी २, ज्ञोजने वखत पहेन्नेकी ३, बाजारमें पहेनकर हिरने फिरनेकी ४,

सोते वखत शय्यामें पहेन्नेकी ५, पूजाके वखत पहे-
नकर स्नान करनेकी ६, और टट्टी जानेके वखत
पहेन्नेकी ७ इस मुजव ७ है

९ चार विकथाओके नाम—स्त्रीकथा, जोजन
कथा, राजकथा और देशकथा ये ४ हैं

१० पाच समवायके नाम—कालवादी, स्वभाव
वादी, नियतवादी, पूर्वकृत कर्मवादी और पुरुपाकार
वो उद्यमवादी

११ श्रावणको हमेशा चौदा नियम धारण क-
रनो वो कौनसे हैं ? सचित्त वस्तुओंका परिमाण
करनी कि आज इतनीही सचित्त वस्तु काममें द्युगा
झण्ड, विगय, उपान—जूते, ताबुल, वस्त्र पुष्पजोग,
वाहन, शय्या, विलेपन, वह्यचर्य, दिशि स्नान और
खानपान वगैराका निरतर फजरमें उठकर परिमाण
धारण कीया करे

१२ तेरह काठिये याने धर्ममें अतराय करने-
वाले हैं उनके नाम—आलस, मोह, अवर्णवाद, अ-
हंकार, कोव, निज्ञा, कृपणता, गुरुजय, शोक, अज्ञान,
अस्थिरता, कुतूहल देखना और तिव्र विषयाज्जिलाप

ये तेरह काठिये है.

१३ पांच प्रकारके मिथ्यात्वोंके नामः—अज्ञि-
ग्रहीक—सच्चे जूठेकी परीक्षा कीये विगर अपनी म-
तिमें आया सोही माने वो ? अनज्ञीग्रहीक—सच्ची
धर्म अच्चे हैं, सच्ची दर्शन अच्चे है. सबकों वंदन करे,
काहेकों किसीकों निंदे ऐसे विष अमृत समान गिने
वो २, अज्ञिनिवेशिक—जानबूझकर जूठा बोले, अ-
पनी अज्ञानतासें झूल परे तोच्ची जूठी प्ररूपणा करे
और कोइ समकित दृष्टि समजावे तो हठ नहि ठोरे
वो ३ सांशयिक—जिनबानीमें संशय रस्के याने अ-
पने अज्ञानसें सिद्धांतके अर्थ समज सके नहि उससें
अस्थिर रहे वो ४, और अनाज्ञोगिक—अन्जानतें कुछ
समझे नहि वो, वा एकेंडियादि जीवकों अनादि का-
लका लगता है वो ५.

१४ समवसरणकी बारह पर्वदाके नाम—१ ग-
णधरकी, २ विमानवासि देवांगनाओंकी, ३ साध्वी-
ओंकी—ये तीन अग्नि कौनमें बैठे, योतिषियोंकी देवी-
की, व्यंतरकी देवीकी, ज्ञुवनपतिकी देवीकी—ये तीन
नैऋत्य कौनमें बैठे. ६ योतिषी देवोंकी, व्यंतरदेवोंकी

भुवनपति देवोंकी ये तीन वायव्य कौनेमें बैठे ए, और
बैमानिक देवोंकी, मनुष्यकी, मनुष्य स्त्रीयोंकी—ये
तीन इज्ञान कौनेमें बैठें. १२

१५ चक्रवर्तीके चौदह रत्नोंके नाम—चक्र, वज्र
चर्म, दनु खड्ग, मणि, कागणी (यह सात रत्न
एकेडिय है) सेनापति, गाथापति, सूत्रधार, पुरोहित,
स्त्री, अश्व और गज (येइ सात पंचेन्द्रिय है) ये
दोनु मिलकर चौदह हुवे

१६ चौदह प्रकारके ज्ञय—इस्ति, सिंह, सर्प,
अग्नि, पानी, राजा, चोर, इहलोक, अकस्मात्, अ-
पयश, अपकीर्ति, परलोक, वेदना और अकाल मरण
ये १४ ज्ञय है

१७ पाच सम्यक्त्वके नाम—ज्ञायिक, औपश-
मिक, ज्ञायोपशमिक, सास्वादन और मिश्र

१८ सिद्धके ३१ गुण—४ सस्थान रहित, १
शरीर रहित, ५ रस रहित, ३ वेद रहित, २ गंध र-
हित, १ जन्म रहित, ५ वर्ण रहित और ७ स्पर्श
रहित. प्रकारातरसें फिर दूसरे ३१ गुण इस मुजव
कहे गये है ५ प्रकारके ज्ञानावर्णाय कर्म रहित, ए

प्रकारके दर्शनावर्णिय कर्म रहित, १ प्रकारके वेद-
नीय कर्म रहित, २ प्रकारके मोक्षनीय कर्म रहित,
४ प्रकारके आयु कर्म रहित, २ प्रकारके नाम कर्म
रहित, २ प्रकारके गोत्र कर्म रहित, और ५ प्रकारके
अंतराय कर्म रहित ये ३१ गुण हैं।

१९ ङः ज्ञाषाओंके नाम—संस्कृत, प्राकृत, सौ-
रशेनी, मागधी, पेशाचिकी और अपभ्रंशी ये ङः हैं।

२० षट्दर्शनके नाम—जैन, द्विजांशक, बौद्ध,
नैयायिक, वैशेषिक और सांख्य ये षः हैं।

२१ चौदह गुणठाणके नाम—मिथ्यात्व, सा-
स्वादन, मिश्र, अविरति सम्यग्दृष्टि, देशविरति,
प्रमत्त, अप्रमत्त, निवृत्ति, अनिवृत्ति वादर, सूक्ष्म सं-
पराय, उपशांतमोह, क्षीणमोह, सयोगी केवली और
अयोगी केवली ये चौदह हैं।

२२ चार कारण—निमित्त, उपादान, असाधा-
रण और अपेक्षा—ये चार हैं।

२३ सात क्षेत्रोंके नाम—साधु, साध्वी, श्राव-
क, श्राविका, ज्ञानजंमार, जिर्णोद्धार और जिन-
विंब—ये ७ हैं।

७४ पर्यूपण पर्वमें श्रावक ज्ञाइयोंको इतने धर्मकार्य अवश्य करनेही चाहियें—याने आठ दिन तक किसी जीवको कोइजी न मारे वैसा ढढेरा पिटवाना चाहिये यथाशक्ति उपवास—उठ—अठमादि तप, जप करना चाहिये आठ दिनतक सुपात्रको अविष्टित्र—हरदम दान देना चाहिये साधर्मि—स्वामिज्ञाइयोंमें सुपारी, नारियल, द्राक्ष, मिसरी इत्यादि वस्तुओंकी प्रजावना करनी चाहिये श्री वीतराग देवकी प्रतिमाकी पूजा करनी—चैत्य परिवाम्नी करनी चाहिये सब साधु साध्वीओंको वदना करनी चाहियें. श्री सघ ज्ञक्ति करनी चाहिये सचित्त परिहार, शीलपालना, सब तरहके थारज—पाप कर्मोंका त्याग, स्वज्ञक्ति मुजब सन्मार्गमें उज्यकाव्यय, ज्ञानज्ञक्ति, अज्ञयदान, कर्मक्षय निमित्त काठस्तग्ग, हमेशा दो टक प्रतिक्रमण, ज्ञारी महोत्सव, कल्प सूत्र वाचने वालेका आहार पानी वगैराले सहायता दे सुख समाधिकी खबर लेनी, श्रीसघको परस्पर—एक दूसरेको खमत खामणे करने, ज्ञारना ज्ञावनी, और एक चित्तसे सपूर्ण कल्पसूत्र सुनना

चाहियें कल्पके समान जो ज्ञव्यजीव होवे सो कल्प सूत्र सुने, और वो विधिपूर्वक सुन्नेवाला पुरुष १२ देवलोकमें जाकर सुरके सुख जुक्ते. परंपरासे आवे ज्ञवमें मोक्ष-सुख पावे. मतलबमें उपर कहे हुवे सब कार्य पर्युषणमें करनेही चाहियें ऐसा ग्रंथोंमें बताया है.

१५ पांच संवत्सरके नाम—१ आदित्य—तिनके ३६१ दिन होते है. आयुष्य वगैराका परिमाण इस संवत्सरसे जानना. २ ऋतु—तिनके ३६० दिन होते है. ३ चंड—तिनके ३५४ दिन अधिक कुछ कम १२ घन्टी होती है. और उनके एक महिनाके २९ दिन अधिक कुछ कम ३१ घन्टी जाननी. ४ नक्षत्र—तिनके ३२७ दिन अधिक ५७ घन्टी जाननी उनके एक महिनेके दिन २७ अधिक कुछ कम १९ घन्टी होती है. ५ अग्निवर्द्धित—तिनके ३७० दिन अधिक ४२॥ घन्टी होती है.

१६ महिनेके नाम—श्रावण—अग्निनंदन १, प्रतिष्ठ २, विजय ३, अतिवर्धन ४, श्रेयान् ५, शिव ६, शिशिर ७, हेमवान् ८, वसंत ९, कुसुम संज्ञव

१०, निदाघ ११, और वननिरोह १२

२३ तिथि और दिनके नाम—पूर्वांग १, सिद्ध-
सेन २, मनोहर ३, यशोज्ज्वल ४, यशोधर ५, सर्व
काम समृद्धि ६, इन्द्र मुर्धाञ्जित ७ सौमनस ८,
घनंजय ९, अर्थसिद्ध १०, अज्ञिजात ११, अत्यज्ञान
१२, शतंजय १३, अग्निवेश १४ और उपशम १५

२८ रात्रिके नाम—उत्तरामा १, सुनक्षत्रा २,
एलापत्या ३, यशोधरा ४, सौमनसा ५, श्रीसञ्जुता
६, विजया ७, वैजयता ८, जयता ९, अपराजिता
१०, इन्द्रा ११, समाहारा १२, तेजा १३, अतितेजा
१४ और देवानंदा १५

२९ आठ मंगलके नाम-

३० आठमदके नाम—जातिमद, कुलमद, बल-
मद, रूपमद, श्रुतमद, तपमद, लाजमद और
ऐश्वर्यमद

३१ सातनयके नाम—नैगमनय, सग्रहनय, व्य-
वहार नय, ऋजु सूत्रनय, शब्दनय समञ्जिरुढनय
और एवञ्जुतनय—ये ७ नय है

३२ चार निक्षेपके नाम—नाम, स्थापना,

द्रव्य और ज्ञाव—ये चार निक्षेपे है.

३३ प्राणियोंका आयुष शास्त्रमें वर्तमान कालकी अंदर इस मुजब कहा है—मनुष्यका १२० वर्ष, हाथीका १२० वर्ष, घोमेका ४०, बाघका ६४, कबूतका १००, गद्धेका २४, खरगी—गेंमेंका २०, सारसका ६०, क्राँचपक्षीका ६०, मुर्धेका ६०, बुगलेका ६०, सांपका १२०, चीलका ५०, सूअरका ५०; कानकमीआ (वागोलका) ५०, हंसका १००, सिंहका १००, कबुवेका १०० से १००० तक, गीधका १००, बकरीका १६, कुत्तेका १२ से १६ तक, जंबुका १३, हिरणका २४, बिह्लीका १२, तोतेका १२ बपैयेका ३०, मठलियोंका १०० से १००० तक, नुंटाका २५, जैसका २५, गौका २५, बैलका २५, घंटेका १६, रुपारेल चीनीका ३०, उलूकका वा जैरवका ५०, उंदर और सस्तेका १० से १४ वर्ष तक और गीरगट और गिलहरीका १ वर्षका आयुष्य होता है. जु कसारीका तीन महीनेका, बिह्लुका ४ महीनेका, चौरेंडी जीवका १ महीनेसे ४ महीने तकका, आयुष्य होता है. तेइंद्रियका ४८ दिनका.

३४ पञ्चस्त्राण करनेसे (आशा मुजब शुद्ध जावसें करनेसे) आगे कहे मुजब नरकायु टुटता है—नौकारसीसे १०० वर्षका, पोरिसीसे १००० वर्षका, साढ पोरिसीसे १०००० वर्षका, पुरिमुद्धसे १००००० वर्षका, एकासनेमें १०००००० वर्षका, नी-वीसे एक क्रोम वर्षका, एकल ठाणेसे दशक्रोम वर्षका, एकल दत्तीसे सो क्रोम वर्षका, आविलसे द-जार क्रोम वर्षका और उपवाससे दश हजार क्रोम वर्षका नरकायु टूट जाता है.

३५ जिन जुवनमें ८४ आशातना न लगने देनी उनके नाम—बलगम न मालना १ जुगार वगैर रम्मत न खेलनी २, टंटा—फिसाद न करना ३, धनु-र्वादादिक कलाका उपयोग न करना ४, कुगले न करना ५, ताबूल सुपारी फल पान वगैर. नहि खाना ६ ताबूलका कुचा तथा नुद्गार न मालना ७, गाली बेनी और विरुद्ध बोलना नहि ८, लघुनीति बनी नीति न करनी ९, शरीर न धोना १०, बाल समारना नहि ११, नाखौन न समारना १२, लोहु न मालना १३, जूने हुवे घान्य वगैर न खाना १४, चढे—घाव

चमनी न समारनी १५, औषधादिकसें पित्तवमन न
 करना १६, वमन न करना १७, दंतुवन न करना १८
 विसामा न करना १९, वकरी, हाथी और घोरे वगैरे
 कौं दमन बंधन न करना २०, दांतोंका मैल न मा-
 लना २१, आंखोंका मैल न मालना २२, नखका मैल
 गंदस्थलकामैल, नाकका, कानका और मथ्येका मैल
 न मालना २३, सोवे नहि २४, मंत्र जूतादिक ग्रह
 और राजादि कार्यका विचार करना नहि २५, वि-
 वाद वाद न करना ३०, हिसाब नामे नहि करना
 ३१, धान्यके परस्पर हिस्से न बेंच लेवें ३२, अपने
 धनका जंमार वहां न रखना ३३, पाउके उपर पाउ
 चमाकर न बैठना ३४, ठाने नहि थापना ३५ कपमे
 न सुखाना ३६, दाल आदि धान्य जुगावना नहि ३७
 पापम वगैरा करना नहि ३८ बनी आदि सुखवनीके
 वास्ते शाक वगैरः न सुखावे ३९, राज जयसें मंदि-
 रमें जा लुपाना नहि ४०, सोग रुदन आक्रंद न क-
 रना ४१, स्त्री राज्य देशजक्त कथा—विकथा न करनी
 ४२, बाण वगैरः अधिकरण शस्त्रें न धरना ४३,
 गज बैल न बांधना ४४, ठंढी जमानेकौं तापनी न

करनी ४५, रसोइ न बनानी ४६, रूपै-नोट-गीनी
 वगैर परखना नहि ४७ अविधिसें निसिद्धि कहे विना
 मंदिरमें न पेठना ४८, ठत्र नहि धरना ४९, जूते न
 पहेना ५०, शस्त्र वाधेहुवे दाखिल नहि होना ५१,
 चम्मर न ढोलाना ५२, मनकी एकाग्रता विना देव
 दर्शन पूजन न करना ५३, शरीरकों तेलका मालेश
 न कराना ५४, सचित्त पुष्प फल आदि पात नहि
 रखना ५५, हार मुझा वस्त्रादिक बहार निकालकर
 मंदिरमें (कुशोज्ञावत होकर) न जाना ५६, जग-
 वानकों देखेहुवेनी हाथ न जोरना ५७, एक सामी
 उत्तरासग न करना ५८, मस्तक मुकुट न धरना
 ५९, पधनीपरके पेचे बुट्टानी वगैर गोमे विना अ-
 वर न जाना ६०, फूलोंके कलगी तोरे सिरपर रखके
 नहि जाना, ६१ शरत न लगानी ६२, गेनीदमेका खेल
 न खेलना ६३, महेमानकों जुहार-कर मिलाकर
 सलाम-सेकहेन्म वगैर न करना ६४, गाल फुलाना
 बोलाना, सीटी बजाना आदि ज्ञारु चेष्टा नहि कर-
 नी ६५, रेकार तुफारादि तिरस्कार वचन न बोलना
 ६६, ब्हेनेवेनेके संबंधकों खानेपीनेकी कसम खाकर

अमंगल न लगाना ६७, लडाइ मारामारी न करना
 ६८, ठूटे बालोंको न सुधारना. ठूटे न करना, सिर
 न खुजावना ६९, कपड़ेसें पाउं पीठ बांधकर न बै-
 ठना ७०, खमानपे न चढना ७१, लंबे पैर रखकर
 न बैठना ७२, पगचंपी न करानी ७३ पाउंका मैल
 न उतारना ७४, वस्त्रकों न झटकना ७५, खटमल
 जु वगैरः न बीनने अगर वहांही न मालना ७६,
 ७६, मैथुन न सेवना ७७, ज्ञोजन न लेना ७८ सोदा
 लेना बेचना नहि ७९, वैद्यक न करना ८०, शघाकों
 न सुधारनी ८१, गुह्य लिंगादि न खुल्ला करना या
 डुरस्त न करना ८२, बाहु युद्ध न करना या मुर्घे
 वगैरःकों न लगाना ८३ और वर्षा समयमें प्रणा-
 लीसें पानी संग्रह न करे न्हावे वा पानी पीनेके वरतन
 न रस्के ८४. ये ८४ उत्कृष्ट आशातनाये जिनमंदिरमें
 त्यागनीही चाहिये.

३६ बाइस अज्ञह्यके नाम—जले १, बरफ २,
 हिदलके ठंमे—~~गुत~~ ~~द्वि~~ ~~के~~ वांश दहिमें रस्के हुवे बने
 ३, रात्रिज्ञोजन ४, वहोत बीजवाले फल ५, वृंताक
 ६, धूप बतलाये विगरका आचार ७, पीपलके फल

८ बरुके फल ९, गुलरके फल १०, अन्जाने फल ११, सब तरहके कद सूरण वगैर बत्तीश अनतकाय १२, मूली वगैर मूल १३, मिट्टी १४ विप्र १५, मास १६, मदिरा १७, सहत १८, मशका १९, को-मल-तुड फल २० चलित रस २१ और कठुवरफल वगैर २२ अज्ञह्य है

३७ सूतक विचार—सूतकका मायना क्या है ? ऐसा कोई पूछे तो उत्तरमें खुलासा करेगे कि—श्री गणगजीकी टीकामे कहा है कि सूतक याने अशुचिके पुद्गलोंका जिस मकानको स्पर्श हुआ होवे, और जिस मनुष्यको वैसे पुद्गलोंका स्पर्श हुआ होवे तिस्की योग्य शुचि यथाविधि कालसे होवे वहातक सूतक कहाजाता है हजामत करानेसे सूतक लगता नहि है, मगर हजामतका बाल देव मदिरमें पन्जावे तो चोराशी आशातना अदरकी एक आशातना लगती है वास्ते बरोबर शरीर शुद्धि करके पूजन करना. लोहु—खून बहेता हो तो देवपूजा नहि करनी प्रसव और मृत्युकालके वरुत अशुचिके पुद्गल बहो-तसे उठलते है, वो अमुक क्षेत्रतक वा अमुक काल

तक रहते हैं. देशावर-विदेशमें कोइ सगा गुजर गया होवे तो न्हानेसँही सूतक मिटजाता है. न्दानेका सबब दूसरा कुछ नहि है. लेकिन शोककी अशुचि-शोकके लियेसँ खुन गर्म होगयाहो मगजपर जोस चमगयाहो वो न्हानेसँ दूर होकर जीकों राहत मिलती है उसलिये स्नान करना अछा है. अब जन्मके समयमें जो सूतक लगता है वो कहते हैं:—

पुत्र जन्मका १० दिन तक और पुत्री जन्मका १२ दिन तक सूतक होता है. उस प्रसंगमें १२ दिन तक उस मकानवाले मनुष्योसँ देवपूजा न होसके; मगर दूसरे मकानमे रहेकर नोजन करते होवे तो दूसरे मकानको पानीसँ जिन पूजा होसके. प्रसूता स्त्रीसँ १ महिनेतक जिनबिंबादिकका दर्शन, वा ४० दिनतक जिन पूजात्री नहि होसकती है, और साधु ब्राध्वीकों आहार पानीत्री न व्होरा सकती है. उस प्रसंगमें घरके गोत्रीओंकों ५ दिन सूतक लगता है. दुसरे प्रसंगमें १० दिनका सूतक लगता है. घोमी गौ, नैस, उंटनी, बकरी वगैरः पशुके बच्चा जन्मे

तो १ दिन तक सूतक रखना चाहिये (जैसेके वच्चा हुवे बाद १५ दिन तक, गौको १० दिन और बकरी-का ८ दिन तक दूध नहि खाना इतने रोज गये बाद काममे लने लायक होता है

अब मरण सबधी सूतकमे ऐसा है कि जिस घरमें मरण हुवा होवे, वा मरनेवालेके गौत्रवालेके घरमे १२ दिन तक सूतक रहेता है उस बखतमें साधुओंको आहारपानी नहि ब्धोराना, वा उस घर-का अग्नि, पानी जिन मंदिरमे पूजाके काममे न लेना चाहिये, क्या कि उस प्रसंगपर वो मकान डु-गडनीक कहा है, वास्ते उपर बताइहुइ सुदत वीतने बाद घर शुचि होती है मुर्देके पास सोनेवालेको ३ दिन बाद जिनपूजा करनी कडपती है मुर्देको खाद्य देनेवाले (मुर्देको उगानेवाले) को ३ दिन तक देव दर्शन, सामायक, प्रतिक्रमणजी नहि करना चाहिये चौथे रोज होसके मुर्देका स्पर्श कीया होवे तो १२ प्रहरतक, और मुर्देका स्पर्श न कीया होवे तो स्नान कीये बाद शुचि होजाता है जिस घरमें जन्म या मरणका सूतक होवे उस घरमें रहेनेवालेके साथ

ज्ञोजन करनेवालेसें १२ दिनतक जिनपूजा नहि हो
 सके. मुँदकों छुनेवालेकों २४ प्रहरतक प्रतिक्रमण
 नहि कीयाजाता है. जन्मके दिनही मरजावे, देशां-
 तरमें मरजावे वा सन्यासी मरजावे उसका १ दिन-
 ही सूतक रहेता है. वेष बदलनेवालेकों ७ प्रहरतक
 सूतक रहेता है. खांध देनेवालेकों १५ प्रहरतक प्र-
 तिक्रमण नहि करना; क्योंकि वहांतक सूतक रहेता
 है. दास दासी (अपने) घरमें मरजावे तो १ दिन-
 सें ३ दिनतक सूतक होता है. आठ वर्षके अंदरकी
 उन्नरवाला बालक मरजावे तो ७ दिन तक सूतक
 रहेता है. गौ जैसादि पशु मालिक रहेताहो उस घ-
 रमें मरजावे तो उसका कलेवर बहार लेगये बाद
 सूतक मिटजाता है. जितने महिनेका स्त्रीका गर्ज
 मरजावे उतने दिनका सूतक लगता है. सूतकके स-
 मयमें प्रतिक्रमणादि आवश्यक क्रिया मुंहसें उच्चार-
 ण कीये बिगर मनमें पाठ कर कीइ जावे—उस्में
 दोष नहि है.

ऋतुवंती स्त्रीकों ३ दिनतक वर्तनादिककों छुने
 न देवे. ४ दिनतक प्रतिक्रमण सामायक नस्सें न

होसके, मगर तपश्चर्या होसके पाच दिन होगये वाद
जिनपूजा होसके रोगादि सबवसें ३ दिनके वादजी
रुधिर देखनेमें आवे तो उस्का दोष नहि है ऐसा
हो तो विवेकसें पवित्र होकर जिनविवादिकका द-
र्शन, अग्र पूजा करनी, साधु साध्वीश्रोंकों आहार-
पानी देना; मगर प्रतिमाजीकी अग्रपूजा नहि करनी
चाहिये ऐसा चर्चरी अग्रमें कहा है

३७ प्रजुके कल्याणकके दिन गुणणा गिनाजा-
ता है उन्का मत्र—व्यवन—माताके उदरमें आवे तव
' ॐ श्री परमेष्ठिने नम ' जन्मके दिन ॐ श्री प्र-
ईते नम दीक्षाके दिन ॐ श्रीनाथाय नम केवल
ज्ञान उत्पन्न होनेके दिन ॐ श्री सर्वज्ञाय नम ती-
र्थकर देव मोक्ष पधारे उस दिन ॐ श्री पारंगताय
नम इस तरह हरएक कल्याणकके दिन गुणणेका
मत्र जपाता है

३८ जिन मदिरमें स्वस्तिक करनेका सबव यह
है कि—जिनालयमें अखरु स्वछ चावलोंका वा सजे
मुक्ताफलका स्वस्तिक कीयाजाता है वो बहोतही
गज्जीर और बड़ोत गहन अर्थ सूचक है, याने स्व-

स्तिकके चार शाखायें हैं वो मनुष्य, देव, तिर्यच और नारकी ये चार गतिकों सूचना देती हैं उपरके तीन बिंदु वो ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप रत्नत्रयीकी सूचना करते हैं. अर्द्ध चंद्राकार चिन्ह है वो सिद्ध शिला—मुक्तिस्थानक सूचक है. और स्वस्तिक की अंदरके पांच बिंदु वो पांच परमेष्ठिकी सूचना देते हैं. स्वस्तिक बनाकर यह याचना करनेकी है कि—है त्रैलोक्यनाथ ! यह चारों गतियोंसें तुम्हाकर मुझे ज्ञानदर्शन चारित्ररूप रत्नत्रयीका दान देकर मोक्षस्थान प्राप्तिकों शक्तिमान बनादो. यदि ऐसा ज्ञावार्थ है; मगर स्वस्तिक करनेवाले नरका मायना क्वचितही जानते होंगे. ज्ञावार्थ समझकर करना वोही उत्तम फलदायक है.

४७ पांच प्रकारके स्वाध्याय—गुरु समीप शिष्य बांचे वो वांचना, शुभ्र ज्ञावसें सूत्रके विचार पूंठे वो पृच्छना. पढाहुवा सूत्रकों पुनः याद करना वो परावर्तना, हृदयमें सूत्रके अर्थका विचारना वो अनुप्रेक्षा, और जो दूसरेकों धर्म कथा सुनावे वो धर्म कथा.

४१ पाच प्रकारके देव—पचेंद्रिय, तिर्यच वा मनुष्य जिसने देवायु बाधा होव वो देवगतिमें उत्पन्न होगा उन्को इव्यदेव कहते है श्री अणगार साधु-ओओ धर्मदेव कहते है चक्रवर्तीको नरदेव कहते है, श्री अरिहंतकों देवाधिदेव कहते है और ज्ञुवनपति आदि चार निःकायकों ज्ञावदेव कहते है

४२ नौकरवाली—मालामें मेरु सह १०८ मणके होते है वो हरएक मिलकर १०८ गुण मुकरीर कीये है, याने ११ गुण श्री अरिहंतजीके, ८ गुण श्री सिद्ध महाराजके, ३६ गुण श्री आचार्यजीके, २५ गुण श्रीजपाध्यायजीके और २७ गुण साधु मुनिराजके ऐसैं १०८ गुण के १०८ मणके रक्के गये है

४३ समुर्द्धिम मनुष्यको पैदा होनेके १४ स्थल है—वनी नीतिमें, लघुनीतिमें, नाकके मैलमें, वमनमें, रसीमें, खूनमें, वीर्यमें, स्त्रीपुरुषे सयोगमें, शुक्र पुद्गल ज्ञीगे उस्मे, बलगममें, पित्तमें, श्दरेकी गटरमें, मरे हुवे शरीरमें और सब असूचीके स्थलोंमें—ये १४ ठिकानेमें पैदा होते है.

प्रकरण बारहवा.

मार्गानुसारीके पैंतीस गुण.

१ न्याय संपन्न वैज्ञव—सब प्रकारके व्यापारमें न्यायपूर्वक वर्तना—अन्यायसें नहि चलना. धणीकी नौकरीमें धणीने सोंपे हुवे काममेंसें पैसे नही खा-जाना. रुसवत नहि लेनी, कम समऊवाले मनुष्य-को ठगनेका प्रयत्न नहि करना, व्याजबटेके करने वाले दूसरे—स्हामनेवाले शखसोंकों जूलश्राप देकर व्याजके ज्यादा पैसे न लेना. मालमें हलका माल मिद्धाकर बेचना नहि. सरकारी नौकरी करनेवाले शखसने अपने अफसरका प्यार मिलानेके वास्ते लो-गोंके उपर कायदे विरुद्ध जुल्म न गुजारना मजदू-रीका धंदा करनेवालोंने रोजके दाम लेकर बराबर काम करना—खोटा दिल करना नहि. ज्ञाति और महाजन पंचोमें शेठाइ करता होतो अपनेसें विरुद्ध मतवालेकों द्वेष बुद्धिसें गैरवाजबी गुन्हेगार—तकसी-रवार ठहेराना नहि, किसी शखसने अपना बिगाना हो वो द्वेषसें उसके उपर जूठा आरोप नहि रखना,

वा उसका नुकसान नहि करना किसीको जूठा क-
 लक न देना, धर्मगुरुके वहानेसे पैसा लेनेके लिये
 जो बातें शास्त्रमें या धर्ममें न होवे वैसी बातें सम-
 जानी नहि नौकरकी औरतके साथ अयोग्य कार्य
 बदफैलीमें प्रवर्तना नहि धर्मके निमित्त पैसे निक-
 लवाकर अपने काममें वापरना—खर्च देना नहि
 धर्म संबंधी कार्यमें वापरनेके लिये जुगी गवाही पू-
 रकर पैसे लेने नहि, धर्म कार्यकी अदर फायदा
 होता होवे तो उसवदल मनमें सोचना कि अपन
 धर्मके लिये जूठ बोलते है—अपने कामके वास्ते
 बोलते नहि है, वास्ते उसमें दोष नहि ऐसा सम-
 ऊकर विपरीत कार्य करना बोज़ी अन्याय है जि-
 नमदिर वा उपाश्रयका आरोवार करनेवालोंने उस
 उस खातेके मकान अपने घरकाममें वापरना नहि,
 वा उस खातेके मनुष्योंके पास खानगी काम क-
 राना नहि कोइ मनुष्य ज्ञातिजोजन करता हो म-
 गर उसके साथ कुछ अदावत होनेके सबवसे उसके
 ज्ञातिजोजनकों विगारुने—नुकसान पहुचानेके वास्ते
 मारामारी—टटा फिसाद खरना करना, चढ़िये उस्ते

ज्यादे पकवान्न लेकर वांन देना, एक दूसरे संप कर, जीधकर जास्ती खाजाना और जोजन खूट पमे वैसी कुयुक्तियें करनी वो ज्ञी अन्याय है. परस्त्री गमन करना नहि. स्त्री वा पुरुष कुष्ठ सलाह प्रंगे तो उन्कों जानते हुवे खोटी उलटी सलाह नहि देनी. अपने मालिकके हुकम सिवा उन्के पैसे उठा-लेनो नहि. एक दूसरेकों टंटा-फिसाद होवे वैसी समज दैनी नहि. अपनी प्रतिष्ठा-मान बढानेके वा-स्ते असत्य धर्मोपदेश देना नहि. अन्यमतावलंबी धर्म संबंधी सच्ची बातें कहेता होवे तां ज्ञी वो धर्म फैल जायगा ऐसा जानकर वो बातें जूंगी पामनेकी युक्तिये चलानी वो ज्ञी अन्याय है. आप अविधिसें प्रवर्तन चलाता होवे और अन्य पुरुषकों विधिसें प्र-वर्तन करता देखकर उन्हपर द्वेष करना वो ज्ञी अ-न्याय हैं. (जो पुरुष विधिसें वर्तन चलाता हो उ-स्कों धन्यवाद देना और अपनेसे उस मुजब वर्त-नना की जाती हो तो उन्के वास्ते अफसोस करना वो अन्याय नही है.) सरकारकी किंवा म्युनिसीपा-लीटीकी जकात चोरी करनी, स्टेंप चोरी करनी वो

जी अन्याय है वैसेही सच्ची पैदास—आमदनी छुपा दे के कम पैदास बतलाकर सरकारको कम टका-कस देना वो जी अन्याय है घर फोरकर चोरी करना, दूसरी कुंची—चावी लागुकर ताला खोलना वा लूट चलानी वो जी अन्याय है गुणवत साधु मु-निराज जगवत और गुरु महाराज के अवर्णवाद बो लनो नहि कन्याविक्रय करके पैसा मिलाकर आपका सादी करनी नहि, इनके सिवा वदोतप्रकारके अन्याय हो सकते है उन सबको ठोरकर व्यापार करना वो मार्गनुसारीका पहिला लक्षण है

२ शिष्टाचार—ज्ञान और क्रियासे करके उत्तम आचरणवाले मनुष्योके आचार उन्को शिष्टाचार कहेते है उसमें लोग निदा करें वैसा काम करना नहि, राजदंड होवे वैसा काम करना नहि वेश्या—परस्त्री गमन त्याग देना जुगार खेलना नहि शीकार खेलनेको जाना नहि, चोरी करनी नहि, जिस्में वदोत जिवहिसा होतीहो वैसा व्यापार करना नहि जिस्में किसी शख्सको नुकसान होताहो या जान जाता-हो ऐसा ऊठा बोलना नहि बनसके तो सब तरहसे

जूंठ बोलना ठोसही देना. मांस, मदिरा तामी, सहित, मशका, कंदमूल वगैरः अन्नद्वय पदार्थ खाना नहि.

३ समान धर्माचरणवालेके साथ विवाह करना. मगर एक गोत्रिय साथ करना नहि. कलिकाल सर्वज्ञ श्रीमान् हेमचंद्राचार्यने योगशास्त्रमें एक गोत्रवालेके साथ विवाह करनेका निषेध कीया है. स्त्री ज्ञर्त्तारका धर्म एकही होवे तो धर्म संबंधी तकरार नठनेका संज्ञव नहिरहेता है, और धर्मकार्य करनेमें परस्पर साधनज्ञूत होपमे.

४ सब तरहके पापोंसे रुटना—कारणकि पाप करनेसे यह लोकमें निंदा और परलोकमें नरकादि दुःख जोगवने पमते है.

५ देशाचार मुजब चलना—जिस देशमें रहेते होवे उस देशमें जो जो काम करनेसे निंदापात्र न होवे वैसे चलना. कपमे जेवर खानपानादि देशरीति मुजबही रखना. क्योंकि जिस देशमें जैसे कपमे पहेत्रेको रीवाज होवे वैसेही न पहेत्रते विपरीत पोशाख रखनेसे चर्चा खमी होती है.

६ साधु साध्वी श्रावक श्राविका और राजा

प्रधान ज़रूरी कोटवाल वगैर किसीकाजी अवर्ण-
वाद बोलना नहि

३ जिस घरमें बारी दरवज्जे वगैर पैठने नि-
कलनेके अनेक मार्ग होवे, वैसे घरमे निवास नहि
करना वैसे घरमे रहेनेसें चोर वगैर का आनाजाना
और स्त्रीको गैरवर्तन चलानेका काम सहेल हो पने.

७ अशुद्ध स्थानवाले मकानमेंजी रहना नहि
जिस मकानकी जमीनमे घून—उधेड़ लगी हांवे,
जिस घरके नीचे हकी मुर्दे दटे हुवे होवे, वा मुर्दे
जलाए होवे, वा आसपास वेदया, जुगारी चोर क-
साइ आदि रहते हो वैसे घरको गोमकर अच्चे पनो-
समें रहेना पनोसी धर्मबंधु होवे तो बहोतही अच्चा
अन्य भतावलवीके पनोससें उन्हेके आचार विचार
अपनेमें घुस जाता है. कि बहोत श्रम उगातेंजी पी-
ठानीसें दूर हो सकते नहि और बहोत करके पाप-
बधनमेंही परना पमता है

८ बहोत गुप्त स्थानमें जी नहि रहना—रहे-
नेसें गुणी पुरुषोको दान देनेका अवकास मिलता
नहि फिर अग्नि प्रकोपादिक बख्त जान माल ब-

चाना ज़ी मुश्केल हो पमता है.

१० बहोत खुल्ले स्थानमें ज़ी रहेना नहि. रहे-
नेसें स्त्रीवर्ग संपूर्ण शरम अदव समाज नहि सकती
फिर दरबजेके आगे सोरबकोर—गुल मचा रहा
होनेसें स्थिर चित्तसें कुञ्जनी हो सकता ही नहि.

११ सत्संग—गुणीजनोंका संग करना—मुनिम-
हाराज, देवगुरु ज्ञत्तिकारक श्रावक, और प्रमाणिक
गृहस्थोंके साथही ज्यादा परिचय रखना. मिथ्या-
त्वीका संग करना नहि. करनेसें अपनी धर्मबुद्धि
अष्ट हो जाती है. सुसंगसें अच्छी बुद्धि होती है और
उनके सदाचरण देखकर अपनकों ज़ी सदाचरण ग्र-
हण करनेका अवकास मिलता है. जुगारी, लुच्चे,
चोर, विश्वासघाती, उग—धूतारे वगैराकी सोवत क-
रनेसें उनके जैसे नीच कृत्य करनेका इरादा सहजही
हो जाता है; वास्ते वैसे अधर्मीनुका त्याग करना.

१२ माता पिताके हुकममें रहेना. उनकी पूजा
करनेवाले बनना, हरहममेशां प्रातःकाल उनको वं-
दन करना, विदेश जानेके वखत और विदेशसे घर
आवे उसवखत ज़ी विनयपूर्वक चरण पूजन करना.

जो मावाप बुढ़े हुवे होवे तो उन्की खाने पीने पहेत्रे उठनेकी शक्ति—गुजास मुजव खातर बरदास रखनी कोइ वखत गुस्ता करना नहि, कटुवचनका प्रहार करना नहि उन्के आदेश—हुकमको उल्लंघन करना नहि, कजी गैर व्याजवी नहि करने लायक काम बतावे तो चूप रहेना, मगर कुञ्च अयोग्य वचन कहेना नहि अर्थात् अयोग्य कर्म करनेसे गैरफायदे होते है वो विनयपूर्वक समझानेका प्रयत्न करना उन्होका अपनेपर अवर्णनीय उपकार है माताने नव मास तक उदरमे धारण कर जार वदन कर अपने लिये अनेक वेदनायें सहन कीइ है—विष्टा मूत्रादि मलीन तत्वोसे अपना वार वार प्रहालन कीया है फिर अपन व्याधि झुक्तने होवे उस वखत जूख प्यास सहन करके अनेक उपचार कर अपना शुद्ध बुद्धिसे पालन कीया है ये सिवा परोक्षतासे उनके उपकारका निर्जरना निरतर वदन कीयाही करता है माता पिता तो जगत्में कल्पवृक्ष समान है अतिमचरमतीर्थकर श्री महावीर स्वामि त्रिसला देवीजीके उदरमे आये पीछे माता 'मेरे दिखनेसें डु खी होगी ' ऐसा विचार

किंचित् वरुत अचलायमान रहे नतनेमे तो माताजीने अनेक कल्पांत कर मूर्छित हो जमीनपर पड गये उसी वरुत जगवंतने अग्निग्रह कीया कि 'मेरे माता पिता स्वर्ग सिधाये पीठेही में दीक्षा अंगीकार करुंगा.' अहा ! पुत्रकी माताकी तर्फ पूज्य बुद्धि तो देखो !! और लक्ष्मण, वैसेही पांढवोने माता पिताकी जो सेवा कीइ है उसका वर्णन सहस्र जीव्हासें करनाज्जी मूश्केल है, उनके कीयेहुवे उपकार बदला तो अपन देसकते नहि तोज्जी निरंतर उन्कों धर्म रस्तेमें जोरुनेके लिये प्रयत्न करके ज्ञक्ति करनी.

१३ जहां स्वराज्य वा परराज्यका जय होवे वैसे स्थळमें रहेना नहि. रहेनेसें धर्मकी धनकी और शरीरकी हानी होती है.

१४ पैदासके प्रमाणमें खर्च करना—पैदाशके चार हिस्से करना, उन्मेसें एक हिस्सा घरमें रखना दूसरा व्यापारमें रोकना, तीसरा आपको और कुटुंबके खानपान वा वस्त्रादिकमे बापरना, और चौथा धर्म कार्यमे व्यय करना. इस मुजब पैदासका व्यय

करना यदि पैदाश कम होवे तो दसवा हिस्सा, किंवा शक्ति होवे तो ज्यादा हिस्सा धर्म निमित्त अवश्य बापरना. वही महेनतसे उदर पोषण होता हो तो मन कोमल रखकर धर्म कार्यमें ड्य व्यय करनेकी अनुमोदना करनी चाहिये

१५ धनके अनुसार वस्त्राञ्जुषण पहेना—धोना ड्य होवे और धनवानके समान कपडे पहनेसे, और ज्यादा धन होवे और गरीबके जैसे कपडे पहनेसे लघुता होती है

१६ शास्त्र श्रवण करनेमें चित्त पिरोना—बुद्धिके आठ प्रकारके गुण उपार्जन करना—याने शास्त्र सुन्नेकी चाहना करनी १, शास्त्र सुना २, उसका अर्थ समजना ३, वो यादीमें रखना ४, उद-उन्में तर्क करना वो सामान्य ज्ञान ५, उपोद-विशेष ज्ञान संपादन करना ६, उहापोद-सदेद न रखना ७, तत्त्वज्ञान याने अमुक वस्तुका ऐसाही है ऐसा निश्चय करना ८, पूर्वोक्त रीतिसे शास्त्र श्रवण करके अपने अंगुण

मोरनेकों उद्यमवंत होना.

१४ अजीर्ण—बड़हजमी मालुम होवें तबतक
आहार नहि करना—खाइहुइ वस्तु हजम न हुइहो
वहांतक दूसरा खोराक नहि लेना. रोग उत्पन्न हो
वैसी वस्तु खानी नहि. स्वादिष्ट वस्तु देखकर शक्ति
और हृदसैं ज्यादा खानी नहि.

१५ अकाल वखत नोजन करना नहि नोज-
नकेलिये जो वखत सुकरीर कीया गयाहो वो वखत
जूलना नहि.

१६ धर्म अर्थ और कामये तीन वर्ग साधनेकों
गृहस्थावस्थामें जो समय धर्म साधनका हो वो व-
खत धर्म साध लेना. पैसा पैदा करनेके वखत पैसा
संपादन करना. जोग—उपजोग जोगनेके समय उस्मे
तत्पर रहेना. क्योंकि धर्म साधन करनेके वखत इव्य
उपार्जन करनेका दिल होनेसैं धर्मका लाज गुमा
वैठते है. सब वस्तुकी प्राप्ति धर्मसैंही है. धर्मसैं चुक
जावे तो तीनुं वर्ग याने अर्थ काम और मोक्ष ये

तीनु हाथमेसे चले जाता है वास्ते दिनमें तीनु वर्ग साधनेका वखत मुकरीर कर लेना जिस्सें ड्य पैदा करनेमें और सत्तारोचित काम करनेमें विघ्न—हरकत न आवे, जगतमें निदाके पात्र न होवे और धर्म साधन श्रद्धी तरहसें होवे यु चलना

२० मुनिराज महाराजकों दान देनेरुप आति-
 छय विनयपूर्वक करना डु लो जनोकों अनुकपादान देना, मुनिकी सेवा—भक्ति करनेमें कुशल रहेना और श्रहकार रहित दान देना

२१ जिन मतमें सन्मानपूर्वक राग—लनेइ र-
 खना—खोटा जूठा इठ—रुदाग्रह करना नहि

२२ गुणीजनोंका पक्ष करना—उन्के साथ सौ-
 मता और दाक्षिण्यता उपयोगमें लेनी जो जो काम करनेके होवे वो वो बदरकी तरह चपल-
 नहि मगर स्थिरतासें करना निरंतर प्रियज्ञा-
 होना किसिकों डु लव लगे—चुरा मालुम होव
 नहि बोलना, अपनो और पिरायाके आत्माका

नुपकार करनेकी बुद्धि रखनी, गुणीजनोंकी अनु-
यायीसँ चलना.

२३ जिस देशमें जानेकी शास्त्रकार रजा न
देते होवे, वा राजाका मना हुकम होवे तो वह दे-
शमें उद्घाटन करके जाना नहि. वैसेही जिस वखतमें
जो काम करनेकी रजा—हुकम न हो तो उस वखत-
में वह कार्य नहि करना. जैसे उष्णकालमें खेती
करे तो फायदा हाश्र न लगे, वर्षाकालमें ठंमे पदार्थ
खानेसँ पाचन न होवे, और समुद्रकी मुसाफिरिसँ
नुकशान होवे, यवनके मुल्कमें जानेसँ जबरदस्तीसँ
अज्ञेय वस्तु खिलादेवे, और जबरदस्तीसँ धर्मब्रह्म
करे वैसे मुल्कमें नहि जाना. अपनी शक्ति—गुंजास
ध्यानमें लेकर काम करना; कारणकि शक्तिसँ ज्यादा
कार्य करनेसँ धनकी और मनकी हानी होनेका
संभव है.

२४ व्रतकी अंदर स्थिर चित्तवाले और ज्ञान-
सँ सावधान हो वैसे पुरुषकी पूजा करनी आत्म-

हितार्थ उनके पाससे ज्ञान संपादन करना और उन्की प्रवृत्ति मुजब चलना

१५ पोषण करने लायक स्वकुटुबका आहार वस्त्रादिकसे पोषण करना

२६ कुल्ल काम शुरू किये पहेलेही शुज्ज अशुज्ज परिणाम दीर्घ दृष्टिसे सोचना, और पीठे कार्या-रज्ज करना.

२७ विशेषज्ञ याने सामान्य और विशेषको प-ह्चिचानते शीखना वा उस्की माहेती मिलानी

२८ लोकवद्वज्ज—याने सब लोगोको प्यारे लगें वैसा काम करना. क्रितीका दिख डुखाना नहि अ-नीतिसे अगर धर्म विरुद्ध आचरणसे लोगोमें प्रिय होनेकी चाहना रखनी नहि

२९ लज्जावंत होना—वेशरमा कार्य करना नहि

३० विनयवंत होना—देव, गुरु, सुश्रावक, कु-टुबी, अध्यापक, हुन्नर मिखानेवाला उस्ताद, राजा, प्रधान वगैर. झेठ—माहुकार, कोइजी गुणसे, धनसे,

पक्षि, और उम्बरसें ज्यादा होवे उन्सवका यथो-
चित विनय करना.

३१ दुःखी जनके उपर हमेशां दया करनेमें
कुशल रहेता. ज्यों वने त्यों हिंसाका काम करना नहि

३२ सौम्यदृष्टि रखनी—कोइ वखत कषायकी
प्रकृति धारण करनी नहि कि जिस्सें दूसरेजी अपने
उपर द्वेष रखे याने दूसरेकों द्वेष उत्पन्न होवे वैसा
गुस्सा नहि रखना.

३३ उः शत्रुपर फतेह मिलानी—याने पहिला
शत्रु काम—स्त्रीसेवा—परस्त्रीका सर्वथा त्याग करना.
अपनी स्त्रीकाजी जैसे रोगार्त्त पुरुषकों औषध खा-
नेकी जरूर परनसें (दवा) खावे तैसें ऋतुस्नानाव-
सरमें केवल चित्तकी उपाधि मिटानेके निमित्त सेवन
करे. ज्ञावना उस्कों त्याग देनेकीही रखनी. कुत्तेकी
तरह निरंतर वा एक रात्रिमें बहोत दफै स्त्रीसंग
करना ये उत्तम पुरुषका लक्षण नहि है. नित्य स्त्री
सेवनसें खुब अपना और स्त्रीका शरीर निर्बल हो-

जाता है, फिर ऐसी बुरी आदतसे स्त्रीके वियोगमें परस्त्री सेवनकी बुद्धि होआती है, वदोतकरके इस्सें डुनियामे लघुता प्राप्त होती है कोइ विश्वास नहि करता है राजा जानजाय तो शीकाके पात्र करदेवे और जवातरमे नरकके डुख चुक्तने परमें, वास्ते ज्यु बने त्यु कामको जीत लेना चाहिये.

दूसरा शत्रु क्रोध—किसीके उपर गुस्सा करना नहि सब प्राणीपर समजाव धारण करना एक क्रो-
 रु पूर्वतक समय पालकर पैदा कीयाहुवा फल क्रोध करनेसें कृणज्जरमें नष्ट होजाता है, और कुगतिके ज्ञाजन होना परमता है हालाहल विष खाया होवे तो उस्से एकही दफै मृत्यु होता है मगर क्रोधरुप हालाहलके वश होनेवाले प्राणीका तो अनंत दफै मृत्यु होता है वास्ते हमेशा कृमा गुण धारण करना शीखलेना.

तीसरा शत्रु लोभ—लोभी मनुष्यका चित्त हर हमेशा फिकमेंही जटकता हुवा मालुम देता है उ-

कों किसी तरहसे संतोष पैदा होताही नहि. फिर लोभके वश होनेसे प्राणी नहि करने लायक काम करनेमें तत्पर होता है. उससे इस दुनियांमें हीलना निंदा होती है और परजन्ममेंही दुःख झुक्तने पकते है—इसलिये जिस वखत जो मिले उसीमेंही संतोष वृत्ति रखनी और नीतिसे उद्यम करना. पूर्व जन्मोंमें जैसा पुन्य संपादन कियाहो वैसाही यह जन्ममें मिलता है लोभ करनेसे ज्यादा मिलता नहि—ऐसा विचार करके संतोष पकटना. संतोषसेही लोभ शांत होता है.

चौथा शत्रु मान-मानदशा धारण करनेसे जगत्में लघुता प्राप्त होती है. लोग अहंकारीका उपनाम देते है गुरु और वरिष्ठ—बड़ोंका विनय होता नहि, विद्या हुन्नर आता नहि और मनुष्य जन्म मिलनेपरही धर्मसाधन कर सकता नहि वास्ते मान बोरकर गंभीरता धारण करलेनी.

पांचवा शत्रु दुर्ष—कोईही काममें अत्यंत हर्ष

धागण नहि करना हर्ष करनेसे गर्वकी पायरीपे च-
 रुते बेर नहि लगती है यह संसारमें सब वस्तु क-
 णिक है शरीर आज सुखी मालुम होता है और
 कल अनेक व्याधीयोसे व्याप्त होजाता है लक्ष्मी
 चचल है. आज जिस घरमें लक्ष्मी लहर लेरही है
 उस घरमें दूसरे रोज झूत निवास करते हुवे नजर
 आते है वास्ते ऐसे अस्थिर पदार्थ पूर्वकृत पुण्यसे
 प्राप्त होवेहो तो उका सङ्गुपयोग करना मगर अ-
 त्यत हर्षित होकर गर्व करना नहि

उगवा शत्रु मद—आठ जातिके मद है—याने
 ज्ञातिमद, कुलमद, बल पराक्रममद, रुपमद, ऋद्धि
 धन—दोलतमद, लोजमद, तपमद और विद्यामद यह
 ७ है. जाति—ज्ञातिका मद गर्व करनेसे नीच जातिमें
 पैदा होता है कुलमद करनेसे नीच गोत्र बंधाता है
 बलमद करनेसे आते जन्ममें निर्बलता प्राप्त होती
 है रुपका मद करनेसे बदसिकल प्राप्त होती है धन
 और ठकुराइका मद करनेसे परजन्ममें दरिद्रि होवे

ज्युं ज्युं मिलता जाय त्युं त्युं ज्यादाे लोन्न करे और मनमें चाहे कि मेंतो कच्ची खोनेवालाही नहि हुं. जो जो व्यापार करुंगा उसमें पैदाही करुंगा—ऐसा आजीविकामद रखनेवाले मनुष्यकों किसी वख्त ऐसा धक्का लगजाता है कि सब दिनका पैदा कियाहुवाच्ची एक दिनमें चला जाता है, और निर्धनावस्था हो जाती है. वास्ते लोन्नका मद करना नहि. तपका मद करनेसे तपश्चर्या निष्फल हो जाती है. विद्याका मद करना नहि. विद्याका मद करनेवाला शरुस अपनेसे ज्यादा विद्वान हो उसकों मान दे सकता नहि. गर्विष्ठ होनेसे संका पमे तो जी दूसरेकों पूंठ जी सकता नहि. ऐसे आस्ते आस्ते अपनी विद्या गुमा बैठता है. और आते जन्ममें अज्ञानी होता है. इस लिये विवेकी जनकों ये ७ प्रकारके मद ठोकर अगर्वीष्ठ बनना.

३४ कृतज्ञता—अपनेपर किसीने उपकार किया

हो वो झूल जाना नहि बख्त हाथ लगे तब उप-
कार बदला अन्ने कामसें दे देना.

३५ पाचों इंद्रियोंकों कब्ज करनेमें हुशियार
रहना इंद्रिय छुट्टी रखनी नहि—बुट्टी रखनेसें यह
लोकमें जी बहोत नुकशान होता है, जैसेंकि स्पर्श
द्रियका सुख लेनेके लिये हस्ति बंधनमें फंस जाता
है रसेंद्रियके विषयसें मठलिया प्राणमुक्त होती है.
घ्राणेंद्रियके विषयसें भ्रमर कमलपर बैठता है और
सूर्य अस्त हो जानेसें कमल बंध हो जाता है
उसें कमलकोपमें कैद हो जाता है चक्षु इंद्रियके
विषयसें पतंगीये चीरागमें पनकर अपनी जान गु-
माते है श्रोतेंद्रियके विषयसें हिरन शीकारीके तावे
होता है इस तरह एक एक इंद्रियोंको बुट्टी ठोकरनेसें
प्राण जाते है तब पाचोंकों विषय में लुब्ध हो जा-
नेसें परजन्ममें कैसे डु ख झुक्तने पने ? उसका ब-
र्णन तो ज्ञानी महाराजदी करसके, वास्ते यथाश-
क्ति विषयका सकोच करना इस मुजब मार्गानुसा-

रीके ३५ गुण जिस पुरुषमें होवे वो पुरुष धर्मके लायक जानना. ऐसैं गुणोंसैं मनुष्य समकितवंत होता है. श्राद्धधर्म और मुनिधर्मकों पाता है, और अंतमें मोक्ष सुख जुक्तता है.

धर्मसंग्रह ग्रंथमें नीचे मुजब मार्गानुसारीके ३५ गुण कहे है:-

तत्र सामान्यतो गेहिधर्मो न्यायार्जितं धनम् ॥

वैवाह्य मन्यगोत्रीयैः कुल शील समैः समम् ॥ १ ॥

शिष्टाचार प्रशंसारि षड्गर्गत्यजनं तथा ॥

इन्द्रियाणां जय उपप्लुतस्थान विवर्जनम् ॥ २ ॥

सुप्रातिवेशिमके स्थाने नातिप्रकटगुप्तके ॥

अनेकनिर्गमद्वारं गृहस्य विनिवेशनम् ॥ ३ ॥

पापज्जीरुकता ख्यात देशाचारप्रपालनम् ॥

सर्वेष्वनपवादित्वं नृपादिषु विशेषतः ॥ ४ ॥

आयोचित व्ययो वेशो विज्ञवाद्यनुसारतः ॥

मातापित्रर्चनं संगः सदाचारैः कृतज्ञता ॥ ५ ॥

अजीर्णोऽज्जोजनं काले जुक्तिः सात्म्याद लौढ्यतः

व्रतस्थज्ञानवृद्धार्हा गहिंतेष्वप्रवर्तनम् ॥ ६ ॥

न्तर्व्यञ्जण दीर्घदृष्टि धर्मश्रुति र्वया ॥
 अष्टबुद्धिर्गुणैर्योग पक्षपातो गुणेषु च ॥ ३ ॥
 सदानन्निनिवेशश्च विशेषज्ञानमन्वदम् ॥
 यथार्हमतिश्रौ साधौ दीनेच प्रतिपन्नता ॥ ७ ॥
 अन्योन्यानुपघातेन त्रिवर्गस्यापि साधनम् ॥
 अदेशकालाचरणं बलाबलविचारणम् ॥ ९ ॥
 यथार्हलोकयात्रा च परोपकृतिपाटवम् ॥
 ह्यौ सौम्यताचेति जिनै प्रज्ञप्तो हितकारिणि ॥१०॥

अर्थ - पहिले सामान्यतासें गृहस्थका धर्म कडे
 ते है. न्यायोपार्जित धन १ समान कुल शीलवाले
 अन्य गोत्रीयके साथ विवाद करना २ उत्तम आचा-
 रकी प्रशंसा ३, काम क्रोधादि व प्रकारके अंतरग
 शत्रुतंका त्याग करना ४, इंद्रियोंका जय करना ५,
 उपडववाले स्थानका त्याग करना ६, अन्धे पत्नीस-
 वाले स्थानमे अति प्रफुट नदि जैसे और अतिगुप्त
 नदि जैसे स्थलमे तथा जाने आनेके अनेक द्वारवाला
 घर बाधना ७, पापसें रुटना ८, देशाचार पालना ९

किसीकीजी निंदा न करनी, उन्मेंजी बड़ोतकरके
 राजाकी निंदा तो विलकुल नहि करनी १०, पैदाश
 मुजब खर्च करना ११, वैजवानुसार वेप रखना १२,
 मातापिताकी सेवा करनी १३, सदाचारवालेका संग
 करना १४, कीयेहुवे कामकी कदर करनी १५, अ-
 जीर्णमें नोजन न करना १६, नियमित वखत लोलु-
 पता ठांकर पाचन होवे उतनाही खाना १७, व्रत
 धारण करनेवाले ज्ञानवृद्धकी सेवा करनी १८, निं-
 दित कार्यमें प्रवृत्ति करनी नहि १९, जरणपोषण क-
 रनेलायक (मातापितादि कुटुंब और चाकर वगैरः)
 का जरणपोषण करना २०, दीर्घदृष्टि रखनी २१,
 धर्म श्रवण करना २२, दया पालनी २३, बुद्धिके
 आठ गुणोंका योग करना २४, गुणके विषे पहपात
 करना २५, हमेशां कदाग्रह रहित होना २६, प्रति-
 दिन विशेष ज्ञान मिलाना २७, अतिथि, साधु तथा
 गरीबका यथायोग्य सत्कार करना २८, परस्पर उ-
 पघात न होवे वैसा धर्म, अर्थ और काम साधलेना
 २९, निषेध देशकालका आचरण करना नहि ३०, स्व

परका बल अबलका विचार करना ३१, यथायोग्य लोकयात्रा याने लोकरीवाज मुजब चलना ३२, परोपकार करनेमे कुशल रहेना ३३, लज्जा रखनी-निर्लज्ज न होजाना ३४, और सौम्यता याने अक्रूरता धारण करनी इस मुजब हितकारी जिनेश्वर जगवानने फरमाया है

॥ इति धर्मसंग्रह ॥

शुद्धिपत्रक

पृष्ठ	लीटी	अशुद्ध	शुद्ध
१	१४	महेमान	पहेचान
५	५	देशमें	देशके
१४	६	वाव्य	वायव्य
१००	१४	जीको	जीवकों
१०६	१०	छुपाते	नहि छुपाते
१५६	६	३५	३६

समाप्तोयं अथ

पाठशाळांमां दाखळ थवा इच्छुनार विद्यार्थिभोव नीचेना सीरनामे पोतानी लायकातना सर्दीफिकेट साथे भरज करवी.

विज्ञप्ति.

सर्व सदृशस्थोने सुविदित छे के, श्री मेसाणा यशोविजयजी जैन संस्कृत पाठशाळा, आज नव वर्षी खोलवामां आवी छे, जेमां सर्व अभ्यासीओने माटे, खावा पीवानी तथा पुस्तक विगेरेनी सवड होवाथी आत्मार्थी, परार्थी, अने स्वार्थी, विद्यार्थिओ, निर्विघ्ने पोताना हेतु पार पाडी शके छे, वळी मुनि महाराजाओने पण अभ्यासनी अनुकूलता उंचा प्रकारनी मळी शके छे, कारण के अत्रे न्याय, व्याकरण, अने धर्म प्रकरणोना अनुभवी अध्यापको राखवामां आव्या छे. अभ्यासीओ तैयार थया पछी तेमने लायकात मुजब परीक्षक तथा नाना मोटा गामोना अध्यापकोनी जग्या आपवामां आवे छे. परीक्षको पोताना काम साथे उपदेशद्वारा नवि नदि पाठशाळाओ खोलावे छे. सर्व गामोनी पाठशाळाओमां जोडतां पुस्तको तथा जरूर जणाय तो शाळाना खर्चमां पण केळवणी खातामांथी मदद आपवामां आवे छे. तेथी शिक्षको तैयार करवानो उद्यम शीघ्रताथी चाले छे, जेने माटे हालमां विद्यार्थिओनी संख्या वीशनी छे. तेओमां केटलाक कर्मग्रंथनो अभ्यास करे छे. वधारे शिक्षकोनी तथा परीक्षकोनी जरूरीयात होवाथी नवा योग्य विद्यार्थिओनी संख्या वधती जाय छे. तेथी आ कमिटिना मेम्बरोने आशा छे के. आवा अद्वितीय खाताने मदद आपवा धनिकना धननो सद्व्यय थशे.

ली, जैनश्रेयस्कर मंडळना सेक्रेटरी.

शा. वेणीचंद सुरचंद.

मेसाणा—यशोविजयजी जैनपाठशाळा.

